।। श्रीहरिः ।।

रामलीला नाटक

प्रकाशक

देहाती पुस्तक भण्डार

4422, नई सड़क, दिल्ली-6

फोन/फैक्स : 23261030, **23985175,**

लेखक:

श्री विश्वेश्वरदयाल गुप्त

'कुशल' एम. ए.

© देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली-6

मूल्य

स्वदेश में: 80/- (अस्सी रुपये)

[redacted]

मुद्रक: स्टार ऑफसेट प्रिंटिंग प्रैस

2229, फरासखाना, दिल्ली-6

100 (एक सौ) प्रतियां प्रकाशित

उपासना-आराधना की पुस्तकें

1. शिव पुराण	**300/-**
2. शिव मंत्रावली	**150/-**
3. रुद्राष्टाध्यायी मूल	**50/-**
4. रुद्राष्टाध्यायी (भा. टी.)	**100/-**
5. शिव स्वरोदय	**50/-**
6. स्तोत्र रत्नाकर	**150/-**
7. श्री विष्णु उपासना	**30/-**
8. श्री कृष्ण उपासना	**30/-**
9. श्री राम उपासना	**30/-**
10. श्री शिव उपासना	**30/-**
11. श्री हनुमान उपासना	**60/**
12. श्री बालाजी उपासना	**30/-**
13. श्री दुर्गा उपासना	**30/-**
14. श्री वैष्णों देवी उपासना	**30/-**
15. श्री सरस्वती उपासना	**30/-**
16. श्री गायत्री उपासना	**30/-**
17. श्री काली उपासना	**30/-**
18. श्री भैरव उपासना	**30/-**
19. श्री गणेश उपासना	**30/-**
20. श्री लक्ष्मी उपासना	**30/-**
24. श्री शनि उपासना	**30/-**
25. तुलसी उपासना	**30/-**
28. श्री रुद्राक्ष उपासना	**60/-**

दुर्लभ अप्राप्य ग्रन्थ अब प्रकाश में

असली प्राचीन हस्तलिखित रावण संहिता

लंकाधिपति दशानन रावण दशों दिशाओं के शासक एवं सर्व विधि-निधान के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान भी थे। ज्योतिष शास्त्र के अमुल्य रत्न भृगु संहिता से भी अधिक दैदीप्यमान, विस्तृत एवं पूर्ण है शिव उपासक रावण रचित रावण संहिता। अभी तक अप्राप्त य ग्रन्थ, परन्तु प्रभु की परम अनुकम्पा और आपके भग्य से आज यह अनुपलब्ध नहीं रहा। पुराण साइज के 1506 पृष्ठ के इस महान ज्योतिष ग्रन्थ में आप पाएंगे संसार के प्रत्येक स्त्री-पुरुष और बालक के साथ-साथ सभी जीवों की कुण्डलियाँ और उनके फलादेश। साथ ही ग्रह-दशाओं, महादशाओं का वर्णन, उनके निवारण के उपाय, तन्त्र शास्त्र एवं यन्त्र-तन्त्र मन्त्र के प्रयोगों तथा तथा चिकित्सा विज्ञान का विस्तृत विवेचन भी है इस ग्रन्थ में। न्योछावर 25.00.00 रुपये। डाकखर्च अलग।

धर्म में आस्था रखने वाले गुण ग्राहक ज्ञानीजनों, ज्योतिष के गूढ़ रहस्यों को समझने के आकांक्षी ज्योतिषचार्यो, यंत्र-मंत्र-तंत्र शास्त्र के आराधकों एवं प्राचीन चिकित्सा पद्धति के प्रेमियों के लिए तो यह हस्तलिखित ग्रन्थ परम उपयोगी सिद्ध होगा ही, भक्ति भाव से इसका पठन-पाठन और श्रद्धापूर्वक नमन करने वाले भी मनवांछित सिद्धियों की प्राप्ति कर सकेंगे, ऐसा विश्वास किया जाता है। विपुल श्रम और राशि व्यय करने पर ही इस ग्रन्थ का प्रकाशन संभव हो सका है फिर भी जन-कल्याण और प्राचीन विलुप्त साहित्य को जन-जन में लोकप्रिय बनाने की भावना से मात्र 2500/- पच्चीस सौ रुपये रखी गई है इस ग्रन्थ की दक्षिणा। रु.1000.00 पेशगी भेजकर शेष 1600.00 एक हजार छ सौ रुपये) की वी. पी. द्वारा यह ग्रन्थ आप घर बैठे प्राप्त कर सकते हैं।

नोटः- फोटो स्टेट ग्रन्थ नकली हैं असली ग्रन्थ ऑफसेट प्रिंटिंग द्वारा छापे गए हैं।

देहली पुस्तक भण्डार

4422, नई सड़क (एम. बी. डी. के सामने) दिल्ली-110 006
फोन/फैक्स: 23279417

विश्वेश्वरदयाल गुप्त 'कुशल'

भूमिका

(चौथे संस्करण की)

'रामलीला नाटक' का यह चौथा संस्करण है। पहले तीन संस्करणों को अपनाने में जनता ने जिस महान् उदारता का परिचय दिया है उसके लिए मैं अपने प्रिय पाठकों का हृदय से आभारी हूं। विभिन्न स्थानों की रामलीला समितियों ने इस पुस्तक की जो प्रशंसा की है. उसका बखान मेरे मुंह से शोभा नहीं देता। वास्तव में रामलीला की ऐसी पुस्तक का अभाव अनुभव किया जा रहा था, जिसमें रामायण की प्रत्येक घटना को नाटक रूप में दर्शाया गया हो। यद्यपि यह महान् कार्य मेरे जैसे अल्प बुद्धि के लिए अत्यन्त कठिन था परन्तु सर्वशक्तिमान् परमात्मा की असीम कृपा और धार्मिक जनता के आशीर्वाद से मैं इस कार्य को करने में सफल हुआ हूं, यह मेरा सौभाग्य है।

तीसरे संस्करण में मैंने दूसरे संस्करण की अनेक त्रुटियों को निकालने का प्रयत्न किया था, जिनका संक्षिप्त विवरण उसकी भूमिका में दे दिया गया था। अब चौथा संस्करण प्रस्तुत करने से पहले कुछ और त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न किया गया है और निम्न विशेषताएं लाने की चेष्टा की गई है। फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि इस संस्करण में कोई दोष नहीं रहा। मैं विद्वान पाठकों से अनुरोध करता हूं कि पुस्तक की कमियों से मुझे फिर सूचित करने की कृपा करें, जिससे अगले संस्करण में उनको दूर करने का प्रयत्न किया जा सके।

१. प्रस्तुत संस्करण में और भी अधिक सरल एवं प्रचलित भाषा का प्रयोग करने का प्रयत्न किया गया है।
२. बहुत से अनावश्यक वार्तालाप निकालकर अधिक रोचक बढ़ा दिये गये हैं।
३. कुछ गाने जो अप्रचलित से प्रतीत हुए, उनके स्थान पर नये

गाने रख दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त अनेक नये सुन्दर और आकर्षक गानों से पुस्तक को सजाया गया है।

४. पुराने संस्करण में अनेकानेक जो छापे की गलतियां थीं उन्हें ठीक करा दिया गया है।

५. प्रकाशक ने अपनी ओर से छपाई आदि में कई परिवर्तन करके पुस्तक को अधिक सजीव और आकर्षक बना दिया है।

'रामलीला नाटक का कथानक गोस्वामी तुलसीदास' का राम चरित मानस है। इसमें लेखक के विचारों का कोई समावेश नहीं। सम्पूर्ण नाटक को १२ अंकों में विभाजित करके यह ध्यान रखा गया है कि एक अंक एक दिन की लीला के लिए पर्याप्त हो। साथ २ नाटकशाला के लिये उचित संकेत देकर इसे रगमंच के लिये और भी उपयुक्त बना दिया गया है। मेरा विश्वास है कि जनता इसे पसन्द करेगी।

धर्म प्रचार के लिए रामलीला खेलने वाली समितियां इस पुस्तक से सहर्ष सहायता ले सकती हैं परन्तु व्यावसायिक कम्पनियों और टिकट लगाकर खेलने वाली सभाओं को लेखक की आज्ञा के बिना इसे रंगमंच पर लाने का अधिकार नहीं है। मेरा यह भी अनुरोध है कि कोई सज्जन इस पुस्तक को सम्पूर्ण या इसका कोई भाग प्रकाशित करने की चेष्टा न करें अन्यथा उनके विरुद्ध वैधानिक कार्रवाई की जायगी।

पुस्तक में मेरा पता न होने की अनेक सज्जन शिकायत करते हैं— वास्तव में उनका कहना ठीक है। इस संस्करण में मैं अपना पता देकर पाठकों से निवेदन करता हूं कि वे रामलीला नाटक के सम्बन्ध में मुझे अपनी अमूल्य राय लिखने की अवश्य कृपा करें। अगले एडीशन में उनकी सम्मति को छापा जावेगा। पुस्तक की कमियों की ओर मेरा ध्यान दिलाने वाले सज्जनों का मैं विशेष आभारी हूंगा।

लेखक

विश्वेश्वर दयाल गुप्त 'कुशल' एम० ए०

नेहरू रोड—बड़ौत (मेरठ)

ॐ

मंगलाचरण

स्तुति श्री गणेश जी की

जय गणेश, महेश, सुरेश प्रभु, नाथ के हाथ ही दास की आबरू,
तू ही तू, तू हा तू, तू हो तू, तू हो तू ।।

शेर—कुण्डल तिलक मुकुट और माला विशाल साजे ।
सेवा में रिद्धि सिद्धि आसन पै हो विराजे ।।
भयहारी शोकनाशक भव-सिन्धु के हो त्राता ।
सुख सम्प्रदा के दानो गुण ज्ञान मुक्ति दाता ।।

प्रतिपाल दयाल कृपाल पिता, सदा कीजियो दोनों पै अपनी दया;
अब आसरा तेरा ही आन लिया ।
जय गणेश ... ...

शेर—तुम सम नहीं जगत में संकटहरण है दूजा ।
देवन में सब से पहले होती है नाथ पूजा ।।
इक बार जो श्रद्धा से चरणों में सिर झुकाए ।
दुख दर्द दूर हों सब मन की मुराद पाए ।।

सुनो नाथ अनाथ की बात जरा, मति मन्द कुशल अरु काम बड़ा;
जरा दीजियो ज्ञान की राह दिखा ।
जय गणश - ... ...

ईश्वर-प्रार्थना

तुम जगत के स्वामी, अन्तर्यामी सर्वाधार हो ... .तुम
असुरारी—भवभयहारी .....
महान, दो ज्ञान सदा आ...आ...आ...तुम

शेर—१. मंगलकरण हो कष्ट निवारण हो श्याम हो ।
अशरण शरण हो दीन उबारन हो राम हो ।।

२. हो दीनानाथ दीन के भक्तों के प्राण हो।
रक्षक हो देश धर्म के सन्तों की जान हो॥
३ सेवक खड़े द्वार पै कल्याण कीजिये।
रखिये कुशल से देश को सन्मान दीजिए॥

अमुरारी—भवभयहारी

महान, दो ज्ञान, सदा···आ···आ···आ····· तुम

(सूत्रधार और नटी का प्रवेश)

सूत्रधार—कोई विष्णु कोई शङ्कर कोई करतार रटता है।
कोई निर्गुण सगुण जगदीश और दातार रटता है॥
निरंजन शोकभन्जन दीन का आधार रटता है।
निराकारी कोई कहता कोई साकार रटता है॥
उजागर प्रेमसागर श्याम और गुणधाम कहते हैं।
श्रद्धा के साथ प्रेमीजन उन्हें ही राम कहते हैं॥

नटी—नाथ! भगवान के इतने नाम क्यों बखाने जाते हैं?

सूत्रधार—प्रिय! इसके कई कारण हैं। एक तो श्रद्धालु लोग अपनी अपनी रुचि अनुसार भगवान को अपने प्रिय नाम से पुकारते हैं, कोई दीनानाथ कहता है तो कोई विश्वपाल; कोई भक्त-वत्सल कहता है तो कोई दीनदयाल। दूसरे भगवान में अनेक शक्तियां हैं और उनमें से प्रत्येक शक्ति के लिए भगवान का एक-एक नाम हो गया है—जैसे विष्णु अर्थात पालने वाला, सुखधाम अर्थात सुखका स्थान, मुनिमन रंजन अर्थात प्रेमियों के हृदय को आनन्द देने वाला। तीसरे समय-समय पर जब भगवान अवतार लेते हैं तो वे किसी दूसरे ही नाम से पुकारे जाते हैं:—

रचाई जैसी लीला नाम भी वैसे ही कहलाये।
पुकारे भी गये वैसे ही जैसे रूप में आये॥

नटी—नाथ ! ऐसे ही समय तो सांसारिक मनुष्यों की बुद्धि संकोच में पड़ जाती है। क्या भगवान भी समय-समय पर जन्मते और मरते हैं। मैंने तो उन्हें अजन्मा और अमरण ही सुना था :—

जो उत्पत्ति जगत की और फिर संहार करते हैं।
अचम्भा है कि वे किस भांति जीते और मरते हैं॥

सूत्रधार—नहीं प्रिय ! भगवान वैसे तो जन्म और मरण से रहित हैं, परन्तु समय-समय पर दुष्टों के नाश और भक्तों के हित के कारण अवतार लेकर अद्भुत लीलाएं रचते हैं। अन्याइयों को संहारते और सन्तों को सुख पहुंचाते हैं :—

उन्हें यों तो नहीं है काम जीने और मरने से।
परन्तु शीघ्र आते हैं जगत के याद करने से॥
हुई जब धर्म की हानि तो फिर ऊंचा उठाते हैं।
रचाकर खेल जग में धर्म-मर्यादा बनाते हैं॥

नटी—नाथ ! यह बात तो मेरी समझ में नहीं आई। भगवान को सर्वशक्तिमान कहते हैं। फिर क्या वे निराकार रहते हुए अपनी शक्ति द्वारा दुष्टों का नाश नहीं कर सकते जो उन्हें अवतार लेने की आवश्यकता होती है।

सूत्रधार—सब कुछ है, परन्तु अवतार लेने से कार्य अधिक सिद्ध होता है। एक तो भक्तों को साक्षात् दर्शन हो जाते हैं; दूसरे अन्याई अपने पाप कर्म का फल पाते हैं। इसके अतिरिक्त भगवान जब आते हैं तो ऐसी मर्यादा बना जाते हैं कि जिस पर चलने से मनुष्य का कल्याण हो और संसार को धर्म-अधर्म की पहचान हो।

नटी—तो क्या भगवान ने कभी अवतार धारण भी किया है ?

सूत्रधार—हां, भगवान के अनेक अवतार हो चुके हैं—जैसे नृसिंह, वामन, राम, कृष्ण इत्यादि।

तेरी रचना सकल सृष्टि के कण-कण से टपकती है।
तेरी महिमा हर इक वस्तु के अन्तर में झलकती है॥
नजर हर फूल पत्तो में तेरा आकार आता है।
जिधर जाता है व्यक्ति उस तरफ भंडार पाता है॥

सुन्दर समय, मन्द सुगन्धित वायु पवित्र जल, एकान्त स्थान और वैराग्य का समागम देखकर मन में कुछ भजन करने की प्रेरणा होती है, हृदय भगवान के कमल रूपा चरणों के ध्यान में लीन होने की अभिलाषा करता है, बुद्धि में ऐसे अवसर से लाभ उठाने का उत्साह पैदा होता है, नेत्र लक्ष्मीपति को याद में बन्द होने के लिए व्याकुल हो रहे हैं :—

उमड़ता जा रहा है ध्यान का उत्साह हृदय में।
बहा है प्रेम को गंगा का इक प्रवाह हृदय में॥
पवन के वेग से परमात्मा की याद आती है।
ध्वनि जलधार की कानों में उसका गीत गाती है॥

(सोचकर) सोच लिया, अपनी आत्मा के लिये सुलभ से सुलभ मार्ग सोच लिया, कुछ समय ज्ञान-ध्यान में बिता कर फिर भूमि का चक्कर लगायेंगे और भूली-भटकी आत्माओं को मार्ग बतायेंगे :—

हजारों पातकी जिस की दया से पार होते हैं।
हजारों के लिये जिसके खुले भण्डार होते हैं॥
हजारों नाम से जिसके परम सुरधाम पाते हैं।
उसी के ध्यान में अब बैठकर मन को लगाते हैं॥

[नारद मुनि का समाधि लगाकर बैठ जाना]

(परदा गिरना)

दृश्य दूसरा

(राजा इन्द्र का दरबार)

[राजा इन्द्र मन्त्रियों सहित बैठे हैं, नाच रंग हो रहा है]

गाना

अप्सरा—तर्ज (लाल दुपट्टा मल मल का)

दरबार तेरा मस्ताना मैं गाते २ हार चलो, नैनों की बरछी
मार चली होजी-होजी।
उभरा जोवन चढ़ी जवानी चाल चलू मस्तानो
सर सर चितवन तीर चलाऊं मैं जोवन दीवाना
दरबार तेरा··· ···
भर भर भर भर हम पीते हैं जोवन-मद के प्याले।
जीवन की बगिया में खिलते नित नित फूल निराले
दरबार तेरा··· ···

[इन्द्रासन का हिलना]

इन्द्र—(स्वयं) हैं! यह क्या? आश्चर्य! महान आश्चर्य! इन्द्रासन क्यों डोलने लगा? अफसोस!

गाना

(तर्ज—गम दिये मुस्तकिल)

मन विकल हो गया, भाग्य फिर सो गया, दुःख की उलझन,
हाय फेरी विधाता ने चितवन।
छा गई संकटों की घटायें-मन की निष्फल हुई कामनायें,
धीर खोने लगे, नष्ट होने लगे, सुख के साधन
हाय फेरी·····
अब 'कुशल' है कहां पर ठिकाना—हो गया आज शत्रु जमाना,
कैसे विपता भरू. किसके आगे करूं, दुख का वर्णन
हाय फेरी·····—

(ठण्डी सांस लेकर) सम्पदा! तू किसी को आराम से नहीं बैठने देती ! मोह ! तेरे होते कोई सुख नहीं पा सकता, लोभ के काले परदे ! तू न्याय की आंखों को अन्धी बना देता है; स्वार्थ की विचित्र माया ! तू दयालु हृदय को भी कठोर बना देती है। आह ! मैं इतनी सम्पत्ति का स्वामी क्या हो गया, सारे संसार की आपत्तियां ही अपने सिर ले लीं अफसोस :—

भाग्य में हाय हमारे कभी आराम नहीं।
दिन नहीं रात नहीं सुबह नहीं शाम नहीं॥
रोज संकट की घटा घिर के नई आती है।
मेरी एक एक घड़ी गम में गुजर जाती है॥

मन्त्री—महाराज, आप के हृदय को दुखी देख कर सेवकों का मन निराश हो रहा है, कहिये भगवन ! आज चित्त क्यों उदास हो रहा है ?

इन्द्र—क्या बताऊं :—

हाय वह रोग है जिसकी न चिकित्सा कोई।
दर्द वह है न जिसे कर सके अच्छा कोई॥

मन्त्री—नहीं महाराज ! मन को इतना अधीर न कीजिये; चित्त को प्रसन्न करने के लिये कोई राग ही सुन लीजिये।

इन्द्र—क्या होगा ?

मेरे बेचैन दिल को यों भला कब चैन आता है।
यह आनन्द है उन्हीं के वास्ते जिनको सुहाता है॥
मेरी किस्मत में लिखी है विधाता ने परेशानी।
मेरी आशाओं पर फेरा मेरी तकदीर ने पानी॥

मन्त्री—महाराज ! ऐसा क्या संकट आया ? जिसने आपके मन का इतना अधीर बनाया।

D

इन्द्र—कैसे बताऊं मन्त्री जी ! इस आपत्ति को कैसे बताऊं ?

गाना

दिल की हालत का बयां करना बहुत दुशवार है।
शोक ने घेरा है, मुझपर संकटों का भार है॥
हाय अब सन्तोष सारा हो गया दिल से विदा।
आज इन्द्रासन जो मेरा डोलता हर बार है॥
किस तरह अपमान का जीवन बिताऊंगा भला।
मान मर्यादा गई तो जिन्दगी बेकार है॥
कर सको जो कुछ करो मेरे लिये दरबारियो।
आज देवन के महाराजा पै भारी भार है॥

मन्त्री जी : इन्द्रासन का डोल जाना मुझे आराम से नहीं बैठने देता; हृदय के विचार आपस में लड़ रहे हैं, आंखों के आगे मानों अंगार झड़ रहे हैं।

मन्त्री—निस्सन्देह, महाराज ! इन्द्रासन का डोल जाना साधारण बात नहीं।

इन्द्र—आह ! भाग्य का चक्कर ! दिनों का फेर !

गाना (तर्ज-तेरी करनी कुटिल···)

टेक—समय अब खोटा आया है-जो यह अशगुन दिखाया है।

दोहा—धीरज अब मन को नहीं, चित्त हुआ बेचैन॥
व्यापी हृदय में अगन, जल भर आया नैन।
महा व्याकुल बनाया है-जो यह अशगुन दिखाया है॥

दोहा—हिम पर्वत की गुफा में, देख स्वच्छ स्थान।
मृत्यु लोक में महर्षि, नारद बैठे आन।
हरि में मन लगाया है-जो यह अशगुन दिखाया है॥

दोहा—जप तप पूरा हो यदि, निश्चय है यह बात।
इन्द्रासन पर ऋषि का, होगा तब आघात॥
सितारा मन्द आया है-जो यह अशगुन दिखाया है।

दोहा—कामदेव; परियो मेरी ? आओ अब कुछ काम॥
'कुशल' रहे इस राज में मिले तभी आराम।
मुझे चिन्ता ने खाया है-जो यह अशगुन दिखाया है॥

अप्सराओ ! तुम रूप की खान और मनुष्य का मन लुभाने में सुजान हो। बस इसी समय हिमगिरि पर चलो जाओ और जिस प्रकार भी हो सके नारद का मन डिगाओ :—

मिटा दूंगा सदा के वास्ते चिन्तायें सब मन की।
कमी तुमको रहेगी फिर न सुख सम्पत के साधन की॥

अप्सराएं—जैसी आज्ञा प्रभु ! (प्रणाम करके जाना)

इन्द्र—(कामदेव से) कामदेव! तुम्हारा पराक्रम तो संसार में विख्यात है। बड़े-बड़े देवताओं का मन लुभा देना तुम्हारे लिये साधारण सी बात है। इस समय तुम भी मेरी सहायता करो और हिमगिरि पर जाकर अपनी माया रचो।

कामदेव—जैसी आज्ञा महाराज।

[कामदेव का जाना, परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(हिमालय की गुफा)

[नारद मुनि समाधि लगाए बैठे हैं, अप्सराएं और कामदेव आते हैं]

गाना (तर्ज-गुल्दो पै जु ँ)

अप्सराएं—कैसा निसार है, कैसा बलिहा है मन-मन।
आई जीवन गुलजार में बहार की रुत प्यारो प्यारी॥

अप्सरा १—आंख मस्तानी दिखाकर करूं दिल को बीमार।
तीर नैनों के चलाकर करूं हर जान के पार॥

अप्सरा २—जाल जुल्फों का बिछाऊं तो कुशल हो क्या करें ?
चाल मस्तानी दिखाऊ ता प्रिघल जाय जिगर॥
नैनों के तीर हैं, गेसू जंजीर हैं;
आना इधर दिल थाम के भरतार रे, सरकार रे.....
कैसा निसार है.....

अप्सरा—ओहो ! यह मुनि तो बड़ा कठोर है। आंखें भी नहीं खोलता; मुख से भी नहीं बोलता। (जाना)

कामदेव—सुरपति इन्द्र को आज्ञानुसार स्वर्ग की अप्सराएं भी अपना अपना पराक्रम दिखा चुकीं परन्तु नारद की समाधि न छुड़ा सकीं। अब मैं भी अपनी शक्ति का आजमाता हूं और युक्त की कमान पर काम का वाण चढ़ाता हूं :—

कराता हूं इसे अब स्वर्ग के आराम का दर्शन।
हिमालय की गुफा में देवपुर के धाम का दर्शन॥
दिखाता हूं अभी करके इसे सारा जहां अच्छा।
पवन अच्छी,शगुन अच्छा,ऋतु अच्छी,समां अच्छा॥

[कामदेव का अपनी माया से बसन्त ऋतु को लाना और काम-रूपी वाण छोड़ना]

गाना (तर्ज—काया का पिंजरा डोले रे)

संसार काम की माया रे, क्यों मूरख जनम गंवाया।
जो योगी योग कमाते, वन में जा ध्यान लगाते।
वे भी इसमें भरमाते रे, जब काम आनकर छाया॥
संसार.....

जब पवन चले मतवारी-महके हर फूल फूलारी।
देखी जा महिमा न्यारी रे, सब ज्ञान-ध्यान बिसराया॥
संसार.....

ज्ञानी, ध्यानी, ब्रह्मचारी-सब शूरवीर, बलकारो।
माया के मेरो पुजारी रे, क्यों 'कुशल' फिरे भरमाया॥
ससार.....

[अनेक प्रकार के आडम्बर रचाना पर नारद की समाधि भंग न होना]

कामदेव—(लज्जित होकर) अफसोस! आज स्वर्ग की अप्सराओं का यौवन और कामदेव का मन्त्र भी नारद मुनि के तप को खंडित न कर सका। देवराज इन्द्र का बड़े से बड़ा प्रयत्न भी इसे ज्ञान-ध्यान से विचलित न कर सका। आह! एक तो सुर-पति की रक्षा का भार उठाया और फिर अपनी शक्ति को निस्तेज बनाया। निस्सन्देह मैंने बहुत बुरा किया जो नारद जसे महर्षि के सामने चला आया, एक सच्चे योगेश्वर को ध्यान से विचलित करने का बीड़ा उठाया। अब यदि ऋषि-राज कोप कर जायेंगे तो जन्म जन्मान्तरों के बदले उतर जाएगे।

(नारद के चरणों में गिरकर) क्षमा! ब्रह्मर्षि क्षमा! यह अभि-मानी कामदेव अपनी शक्ति पर फूला फिरता था, अहकारवश आपका पराक्रम भूला फिरता था :—

न समझा मोह में अपने, निरादार किसका होता है।
मेरा अभिमान मेरे रास्ते में शूल बोता है॥
हुआ है आज तक दुनिया में सिर अभिमान का नीचा।
झुकाना पड़ता है जीवन सदा अपमान का नीचा॥

नारद—(समाधि से जागकर) कामदेव! कहो क्या बात है? किस

अपराध की क्षमा मांग रहे हो ? तुम्हें किस दोष ने अपमानित किया है ?

कामदेव—भगवन ! आपकी घोर तपस्या देखकर सुरपति इन्द्र भयभीत हो गया और इन्द्रासन जाने का शोक अजीत हो गया। तब देवराज ने रम्भा आदि अप्सराओं को मेरे सहित आज्ञा दो कि यदि नारद को समाधि में विघ्न आए तो मेरा व्याकुल मन चैन पाए। हे नाथ ! स्वामी का आज्ञा पाकर अप्सराओं सहित हिमगिरि पर आया और हर प्रकार से अपनी शक्ति को आजमाया, परन्तु आपको अपने ध्यान में अटल पाया। हे नाथ ! सेवक से यह अपराध हुआ है; क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये :—

किया अभिमान जो मैंने यह फल उसका ही पाया है।
क्षमा कीजे प्रभो अब शीश चरणा में झुकाया है॥

नारद—हे काम ! ऋषि लोग क्रोध नहीं किया करते, और सांसारिक पदार्थों पर मन नहीं दिया करते। तुमने जो कुछ किया इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं ? मैं जानता हूं कि इन्द्र को अपने इन्द्रासन का बड़ा मोह है। वह त्यागी पुरुषों पर भी सन्देह कर बैठता है परन्तु हम उस पर भी क्षोभित नहीं हैं तुम निर्भय होकर जाओ और इन्द्र के मन को शान्ति दो।

ध्यान हम करते नहीं है सम्पदा के वास्ते।
है नहीं जीवन हमारा लालसा के वास्ते॥
छोड़ दी अभिलाषा सारी त्याग माया का किया।
मोह से मुंह मोड़ कर जंगल में डेरा आ किया॥

कामदेव—धन्य है महाराज ! (नमस्कार करके जाना)

नारद—(स्वयं, अभिमान में आकर) कामदेव, अभिमानी कामदेव, नाशवान कामना का दास; इन्द्र के द्वार पर पड़ा रहने वाला

भिखारी, और महर्षि नारद से युद्ध की तैयारी। एक बार तो शिवजी महाराज के सामने जाकर हार पाई और फिर मेरे सम्मुख आते हुए शर्म ना आई। एक तो भगवान के चरणों का ध्यान, दूसरे नारद का ज्ञान और उस पर कामदेव का यह अभिमान। स्वार्थी कामदेव! तू मुझे भी कोई सासारिक मनुष्य जानता है जो इस प्रकार अपमानित करने की ठानता है। यह नहीं समझता कि ईश्वर के प्रेमी बाधाओं से कब डरते हैं; जब आपत्तियां आती हैं तो और भी आगे बढ़ते हैं।

जो व्यापे चांद से अग्नि झड़ें अंगार बादल से।
महि पर आ गिरे सूरज चाहे आकाश मंडल से॥
बलाओं की भी हो वर्षा तो अपने सिर पे लेते हैं।
जो प्रेमी हैं वे सच्चे प्रेम पर ही प्राण देते हैं॥

कामदेव ने समझा होगा कि मैं अपने बल से नारद को आधीन कर लूंगा; किन्तु यहां आकर बेचारे ने अपना ही कुछ बिगाड़ा, लो देखलो आज मैंने उसे बुरी तरह पछाड़ा। अब मैं शिवजी महाराज के पास जाता हूं और अपनी विजय का समाचार सुनाता हूं, बोलो महर्षि नारद की जय!

[नारद का जाना; परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(कैलाश पर्वत)

[शिवजी महाराज गणों सहित बैठे हैं। नारद मुनि आते हैं।]

नारद—महादेव जी, नमस्कार!

शिवजी—नमस्कार नारद जी! आइये पधारिये, कुशल तो है! आज इधर कैसे भ्रमण हो गया?

नारद—एक बड़ा शुभ समाचार लाया हूं महाराज ! आप को सुन कर बड़ा आनन्द होगा ।

शिवजी—कहिये, कहिये ! ऐसा क्या समाचार है ? नारद जी ! शीघ्र ही कहिए ।

नारद—अजी ! वह है न आपका पुराना शत्रु कामदेव, जिसने एक बार आपके सामने आकर भी अपनी माया रचाई थी और आपके द्वारा पूर्ण हार पाई थी ।

शिवजी—हाँ-हां कहो-कहो ! क्या उसने कोई और नया उत्पात कर डाला है ?

नारद—हां ! करना चाहता था; परन्तु हम भी अपने नाम के नारद हैं । हमने उसे हरा कर ही छोड़ा और अच्छी तरह उसका अभिमान तोड़ा । क्या आपको यह जानकर प्रसन्नता नहीं ?

शिवजी—है क्यों नहीं ? बड़ा ही शुभ समाचार है, परन्तु यह कैसे हुआ नारद जी ?

नारद—भगवान ! मैं विचरता-विचरता हिमालय के निकट जा, पहुंचा, वहां एक कन्दरा का सुन्दर दृश्य और एकान्त स्थान देखकर समाधि लगा कर बैठ गया । भजन में ऐसा लीलीन हुआ कि लोक और परलोक की कुछ खबर न रही । इन्द्र ने जैसा कि आप जानते हैं अपने इन्द्रासन के भय से कामदेव और रम्भा आदि अप्सराओं को मेरा तप खण्डित करने के लिए भेजा । उन सब ने मिलकर अत्यन्त जोर लगाया; परन्तु मेरी समाधि में जरा भी विघ्न न आया । कामदेव घबराया और अनेक प्रकार से विनती करके अपना अपराध क्षमा कराया । अब कहिये कि संसार में ऐसा कौन है जो कामदेव को जीत सकता हो ? क्या मैंने साधारण कार्य किया है ?

अब मेरा साहस जगत में किससे देखा जायगा।
जो सुनेगा जीत मेरी वह ही शरमा जायगा॥

शिवजी—निस्सन्देह नारद जी ! आपके पराक्रम को कौन पा सकता है ? ऐसे तेज के सामने कौन आंखें उठा सकता है ? परन्तु मैं आपके हित के लिये एक प्रार्थना करता हूं कि जिस प्रकार यह समाचार आपने मुझको सुनाया, कहीं विष्णु भगवान से न कह बैठना।

नारद—भगवान देखा जायगा। (स्वयं) अच्छी रही; न कहने की एक ही कही। काम करे और यश न फैलाए; वीर हो और नाम न पाए। अजी, इनकी बातों में कौन पड़े ? कहूंगा, अपनी वीरता का वृत्तान्त पिता जी और विष्णु भगवान से भी अवश्य कहूंगा :—

दिखाऊंगा उन्हें यश किस तरह योगी कमाते हैं।
वही बस यश के भागी हैं जो कुछ करके दिखाते हैं॥

[प्रस्थान]

शिवजी—प्रतीत होता है कि महर्षि नारद के मन में अभिमान उत्पन्न हो गया है। अब ये अपनी जीत का समाचार विष्णु भगवान से कहे बिना न मानेंगे। हे गणो ! तुम नारद जी के पीछे २ चले जाओ और जो कुछ देखो हमें आकर सुनाओ॥

गण—जैसी आज्ञा प्रभु।

[दो गणों का नारद के पीछे जाना]

[परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

[ब्रह्म लोक में ब्रह्मा जी अपने आसन पर विराजमान हैं नारद जी आते हैं]

नारद—पिता जी के चरणों में प्रणाम।

ब्रह्मा जी—अहा ! नारद जी ! आइये, पधारिये। कुशल तो है। आज कैसे आगमन हुआ ?

नारद—महाराज, आज तो भाग्य की रेखा बड़ी ही अनुकूल आई है। आपके आशीर्वाद से मैंने एक महान संग्राम में विजय पाई है।

ब्रह्मा जी—आह ! बड़ा आनन्द दायक सवाद है। कहिये, कहिये, क्या समाचार है ?

नारद—महाराज पहले मुझे आशीर्वाद दीजिये और फिर मेरा वृत्तान्त सुन लीजिये।

ब्रह्मा जी—हां-हां कहो, क्या सन्देश लाए हो ?

नारद—अजी वह है न इन्द्र का दास कामदेव, जिसने सारे संसार को नाच नचा रखा है, प्रत्येक को अपना दास बना रखा है। आज उसी की अशुभ घड़ी आई और उसने मेरे द्वारा भारी हार पाई।

ब्रह्मा जी—यह कैसे हुआ नारद जी ?

नारद—महाराज मैं हिमालय पर्वत पर समाधि लगाए बैठा था कि इन्द्र के भेजे हुए कामदेव और कई अप्सराएं आईं और उन्होंने मेरा तप खण्डित करने के लिए अनेक लीलाएं रचाईं। परन्तु अपनी शक्ति को निस्तेज पाया और अन्त में क्षमा मांग कर ही अपना पीछा छुड़ाया। इस प्रकार मैंने कामदेव को जीत लिया और अवश्य जीत लिया। हा ! हा ! हा ! (हंसना)

ब्रह्मा जी—बात तो बड़े आनन्द की है नारद जी ! निस्सन्देह आपने बड़ा पराक्रम दिखलाया है जो ऐसे अभिमानी को नीचा दिखाया है परन्तु एक बात मेरी भी ध्यान में रखना कि यह

वृत्तान्त विष्णु भगवान को न सुनाना। आप का हित इसी मे है।

नारद—(एक ओर) वाह !

काम करके फिर न फैलाएं उसे ससार में।
और होंगे ऐसे मूरख विश्व के विस्तार में॥
जीत का अपनी सुनाऊंगा उन्हें एक एक हाल।
वे दयालु हैं सदा रहते हैं भक्तों पर दयाल॥

[नारद का प्रस्थान, परदा गिरना]

दृश्य छठा

(क्षीर सागर)

[विष्णु भगवान शेष-शय्या पर लेटे हैं, लक्ष्मी चरण दबा रही हैं। नारद जी आते हैं]

विष्णु—(खड़े होकर) अहा योगेश्वर नारद जी ! अब की बार तो बहुत दिनों मे कृपा की। कहिये चित्त तो प्रसन्न है ? मृत्यु लोक में क्या हो रहा है ?

नारद—महाराज हिमगिरी पर एक बड़ी ही विचित्र लीला देखने में आई !

विष्णु—क्या देखा नारद जी !

नारद—वन की शोभा और एकान्त स्थान देखकर चित्त प्रफुल्लित हो उठा और मैं आप के चरणों के ध्यान में मन लगाकर बैठ गया।

विष्णु—फिर ?

नारद—वही है ना लालसा का दास इन्द्र ! जिसको हर समय इन्द्रासन की चिन्ता व्याकुल किये रहती है। हमारे ज्ञान-ध्यान से

भयभीत होकर विचारने लगा कि कहीं नारद योगबल से मेरा इन्द्रासन न छीन ले।

विष्णु—यह इन्द्रदेव की भूल है।

नारद—यही तो मेरा भी तात्पर्य है प्रभो। इसी भय के कारण उसने मेरी समाधि को खण्डित करने के लिये अनेक प्रयत्न किये; इन्द्रलोक की अप्सराओं और कामदेव को हिमगिरि पर भेजा। उन्होंने भाँति-भांति के जाल फैलाये; नाच किये और गायन गाए।

विष्णु—और तुम अपने ध्यान में लौलीन ही रहे ?

नारद—और नहीं तो क्या उनके नाशवान आनन्द पर फूल जाता; मोह में पड़कर आपके चरणों को भूल जाता।

विष्णु—हां ठीक है। यह तो स्वाभाविक ही है। अच्छा फिर क्या हुआ ?

नारद—जब उन्होंने मुझे अपनी तपस्या में पूर्ण पाया तो आधीनता के साथ मेरे सामने सिर झुकाया। मैंने भी जैसा कि आपके भक्तों का स्वभाव होता है उन्हें क्षमा करके इन्द्रलोक जाने की आज्ञा दे दी।

विष्णु—यह आपने बहुत अच्छा किया नारद जी !

नारद—परन्तु महाराज, मैंने कामदेव को अपने आधीन करके छोड़ा। जो बड़े-बड़े योगेश्वरों और देवताओं के वश में नहीं आता था। आज उसका अच्छी तरह अभिमान तोड़ा। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है ?

विष्णु—हां, अवश्य है, परन्तु नारद जी, आपके लिये नहीं ! क्योंकि जहां ज्ञान और वैराग्य बसते हैं वहां ऐसे विकार कैसे ठहर

सकते हैं ? एक कामदेव क्या यदि हजारों कामदेव भी आएं तो भी आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते ; सारे संसार के पाखंड मिलकर भी अकेले ब्रह्मचर्य व्रत को नहीं पछाड़ सकते ।

सदा हृदय में जिनके धर्म की मर्यादा बसती है ।
उन्हें सत से गिरादे यह भला फिर किस की शक्ति है।।

नारद—यह तो ठीक है महाराज ! किन्तु अब लोक और परलोक में मेरा पराक्रम फैले बिना न रहेगा । बोलो सन्त सनातन की जय !

[नारद का गाते हुए प्रस्थान]

विष्णु—विचार शक्ति से ज्ञात हुआ कि नारद जी के हृदय पर कुछ अभिमान का प्रभाव पड़ गया है; वैराग्य और ज्ञान के दर्पण पर अहंकार का मैल चढ गया है; सोई मैं इसे अवश्य दूर करूंगा । नारद जी हमारे परमभक्त हैं और भक्त की रक्षा करना हमारा मुख्य कर्त्तव्य है ।

न हो कर्त्तव्य यह मेरा तो मैं अशरण शरण कैसा ।
बचाऊं जो न भक्तों को तो फिर मेरा परण कैसा ।।

[ताली बजाना-योग माया का प्रकट होना]

माया—नाथ ! क्या आज्ञा है ?

विष्णु—हमें अपने भक्त के हित के लिये कुछ कार्य करना है । इस लिये तुम मृत्यु लोक में जाकर एक सुन्दर नगर बसाओ और शीलनिधि को वहां का राजा बनाओ । (लक्ष्मी से) लक्ष्मीजी! तुम अभी जाकर शीलनिधि का विश्वमोहिनी कन्या बन जाओ ।

[दोनों का प्रणाम करके जाना, परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(शीलनिधि का दरबार)

शीलनिधि—मन्त्री जी ! अब कन्या युवती हो गई है, इसके लिए वर की खोज होनी चाहिए।

मन्त्री—हां महाराज ! मेरा भी ऐसा ही विचार है।

[नारद का प्रवेश]

शीलनिधि—(खड़े होकर) मुनिवर प्रणाम; आइए, पधारिये। आपने दर्शन देकर बड़ी कृपा की।

नारद—आनन्द रहो राजन ! राज्य में कुशल हो।

शीलनिधि—महाराज मेरी कन्या विश्वमोहिनी विवाह योग्य हो गई है, कृपा करक बतलाइये कि इसे कैसा वर मिलेगा।

नारद—अच्छा राजन् ! कन्या को बुलवाइये और मुझे उसका हाथ दिखलाइए।

शीलनिधि—जैसे आज्ञा महाराज ! द्वारपाल तुम अभी जाकर विश्वमोहिनी को बुला लाओ।

[द्वारपाल का जाना और विश्वमोहिनी सहित आना]

विश्वमोहिनी—(हाथ जोड़कर) मुनिराज प्रणाम !

नारद—जीवित रहो, सौभाग्यवती हो; लाओ हमें अपना हाथ दिखलाओ।

[नारद जी का हाथ देखकर विचार करना]

(स्वयं) ओहो, हस्त रेखा बताती है कि कन्या साक्षात लक्ष्मी है। यह निस्सन्देह स्वर्ग को स्वामिनी बनेगी (प्रकट) राजन् ! तुम्हारी कन्या बड़ी भाग्यशाली है। तुम इसका स्वयंवर

रचाओ और देश-देशान्तर के राजाओं को बुलाओ; इसको निस्सन्देह बड़ा श्रेष्ठ वर मिलेगा।

शीलनिधि—जैसी आज्ञा मुनिवर !

[नारद का जाना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

(परदा जंगल)

नारद—(स्वयं) कन्या के लक्षण देखने से प्रतीत हुआ कि वह बड़ी भाग्यशाली है। जिस वर से उसका सस्कार होगा वह अमर पद को पायेगा; विश्व में तेजस्वी और पराक्रमी कहलायेगा। निस्सन्देह यदि वह कन्या मुझे मिल जाय तो मेरा भाग्य उदय हो जाय, परन्तु उसको पाने का कोई उपाय समझ में नहीं आता। क्या करूं ? किससे कहूं ? रूप ऐसा सुन्दर हो कि कन्या देखते ही रीझ जाए और जयमाल का सौभाग्य मुझ ही प्राप्त हो (सोच कर) हां, याद आया। एक काम करूं, विष्णु भगवान के पास चलूं और हरि का रूप मांग लाऊं (फिर सोच कर) परन्तु जाने-आने में विलम्ब होगा और कार्य की पूर्ति में विघ्न पड़गा। भगवान तो सर्वव्यापी हैं, ध्यान द्वारा यहीं याद करूं तो स्वयं प्रकट हो जाएगे (हाथ जोड़ कर) हे कृपालु भगवान ! हे कृपा सिन्धु जगदीश ! हे दीनों की रक्षा करने वाले स्वामी ! मेरी रक्षा करो; मेरे मन की इच्छा को पूरी करो। मैं आपको नमस्कार करता हूं, मुझे केवल आपका ही सहारा है।

मिटाओगे तुम्हीं यह रोग अब इसकी दवा बन कर।
हरोगे शोक को मेरे तुम्हीं अब आसरा बनकर॥

कोई संसार में निर्बल-उबारन हो नहीं सकता।
मेरा संकट तुम्हारे बिन निवारण हो नहीं सकता॥

गाना

मिटाओ नाथ अब संकट मिटाओ।
दया सागर दया अपनी दिखाओ॥
तुम्हीं निराश्रय के आश्रय हो।
तुम्हीं बस डूबते को आ बचाओ॥
निराशा भक्त का भी हो चली है॥
करो मत देर अब धीरज बधाओ॥
समय अब शयन करने का नहीं है।
'कुशल' है तब ही जब दर्शन दिखाओ॥

[पटाखे की आवाज पर प्लाट का फटना, भगवान का दर्शन]

विष्णु भगवान—नारद जी! ऐसी शीघ्रता से याद करने का कारण?

नारद—भगवान! आपके पास से चलकर भ्रमण करता हुआ निकला तो मार्ग में एक विशाल नगर पड़ा। वहां के राजा की कन्या के शुभ विवाह का समाचार पाकर यह दास भी चला गया। हे प्रभु! उस कन्या के लक्षण देखकर आपके भक्त के मन में विवाह करने की अभिलाषा उत्पन्न हो गई। सोई महाराज, मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिए और कुछ समय के लिए हरि का रूप दे दीजिए।

विष्णु भगवान—नारद जी, मुझे हर समय तुम्हारा हित प्यारा है। मैं हर घड़ी तुम्हारे भले की सोचता रहता हूं। जिस प्रकार वद्य रोगी को उसके रोग के विरुद्ध मांगने पर भी मीठी दवा नहीं देता उसी प्रकार मैंने तुम्हारा विचारा है। मैं तुम्हारा अनहित कदापि न होने दूंगा।

मुझे खुद अपने प्यारे को है प्यारे से अधिक चिंता।
तुम्हारी मनमें रहती है तुम्हारे से अधिक चिंता॥
मैं सब कुछ जानता हूं क्या करूंगा और क्या होगा।
मगर होगा वही जिसमें तुम्हारा ही भला होगा॥

[बानर का रूप देकर अन्तर्धान हो जाना]

नारद—(प्रसन्न होकर) लो भगवान भी आ गये और सकट भी मिट गया। अब स्वयंवर में जाकर, हरि का रूप दिखाकर, कन्या को मोहित करूंगा और जिस प्रकार होगा उसे वरूंगा।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य नौवां

(विश्वमोहिनी का स्वयंवर)

[अनेक राजाओं का बैठे हुए दिखाई देना, विश्वमोहिनी का जयमाल लेकर सबके बीच में घूमना, नारद का उसको बार-बार अपना रूप दिखाना किन्तु कन्या का घबराना। अन्त में विष्णु भगवान का आना, विश्वमोहिनी का उन्हें जयमाल पहनाना, दोनों का जाना और शिवजी के गणों का नारद की हंसी उड़ाना।]

गाना

गण—

टेक—क्यों रे नारद नादान, क्यों रे नारद नादान!
छाया है तुझको कैसा अभिमान? क्यों रे···

अन्तरा—(१) जप-तप छोड़ वनों से आया ज्ञान ध्यान बिसराया।
त्यागी होकर फंसा मोह में, माया में भरमाया॥
क्यों रे·····

(२) दुनियां में प्रसिद्ध हुआ जिस कामदेव का स्वामा।
इक क्षण में ही फिर बन बठा दास उसो का कामो॥
क्यों रे.....

(३) दुनियां के आनन्द में मूरख मन तेरा ललचाया।
कुशल छोड़कर साधु-सन्त की दुष्टाचार बनाया॥
क्यों रे.....

[अंगूठा दिखाकर चिढ़ाना, नारद का क्रोध आना]

नारद—दुष्टों ! तुम दोनों महापापी हो, अधर्मी हो। तुमने हमारी हंसो उड़ाई है, लो अब इसका दण्ड भी पाओ और मृत्युलोक में जाकर राक्षस हो जाओ।

सदा भोगोगे डूबा पाप के आकार में जीवन।
उठाएगा महा अपकीर्ति संसार में जीवन॥
यही है बस तुम्हारे वास्ते अभिमान का बदला।
मिलेगा हर घड़ी-अपमान से अपमान का बदला॥

गण—क्षमा ! महाराज क्षमा ! हम शिवजो महाराज के गण हैं। आप के मुख को अनोखो आकृति को देखकर हमें हंसी आ गई थी। हमारा अपराध क्षमा कर दोजिए; ऐसा कठोर शाप न दीजिए।

नारद—नहीं ! हमारा शाप मिथ्या नहीं हो सकता। तुम राक्षस तो अवश्य बनोगे परन्तु जब विष्णु भगवान राम अवतार लेंगे तो तुम्हारा उद्धार होगा। जाओ।

[गणों का जाना, नारद जी का जल में अपना मुंह देखकर क्रोधित होना।]

नारद—छल, कपट, धोखा ! याचना का बदला अपमान से ! विश्वा-सघातो का काम और विष्णु भगवान से ! नहीं-नहीं अब

उसकी बुद्धि मलीन हो गई है; उसका हृदय पाखंड से भर गया है। रूप मांगा हरि का और दे दिया बानर का ! यही है उदारता ! यही है न्याय ! भरी सभा में मेरा अपमान कराया, सदा के लिए मुझे स्वार्थी ठहराया :—

मुनासिब था यही तुझको श्री भगवान कहलाकर।
यही गुण हमको दिखलाया बड़ा गुणवान कहलाकर॥
मेरे तो वास्ते जग में निराशा ही निराशा है।
परन्तु देखले तू भी कपट का क्या तमाशा है॥

[क्रोध में भरे हुए बड़े वेग के साथ जाना, परदा गिरना]

दृश्य दसवां

(परदा जंगल)

[विष्णु भगवान और विश्वमोहिनी जा रहे हैं, पीछे से नारद जी आते हैं।]

नारद—ठहर ! दूसरों की आशाओं पर पानी फेर कर अपनी कीर्ति को बढ़ाने वाले ठहर ! भक्त के साथ द्रोही का काम करके दीनरक्षक और भक्तवत्सल कहलाने वाले ठहर !

तुझको अब तक न मिला राह पै लाने वाला।
तेरी गम्भीरता में प्रश्न उठाने वाला॥
भक्त का आपने किया खूब ही आदर तूने।
लोक में करके यह नारद का निरादर तूने॥

विष्णु—मुनिराज क्या आज्ञा है ?

नारद—आज्ञा ! आज्ञा तो तुम्हारी है। जो मन में आता है सो करते हो। न किसी का सम्मान है न किसी से डरते हो। मैं जानता हूं कि तुम सर्वव्यापी हो, परन्तु उतने ही पापी हो। मैंने बड़ा

मूल की जो तुम्हारे पास याचना करने चला आया; नहीं तो तुम वही हो कि सागर-मंथन के समय महादेव जी को विष पिलाया; मोहिनी रूप धार कर भस्मासुर का नाश कराया:—

भला ऐसे से खाये कोई मूरख लाभ का धोखा।
घुसा हो जिसकी नस-नस में कपट, छल सर्वदा धोखा॥
जो यह आदत तुम्हारी है कहां विश्राम है मेरा।
न बदला लू बदो का तो न नारद नाम है मेरा॥

विष्णु—शान्त, मुनिवर शान्त!

नारद—शान्त होने का बहुत काम किया है जो मुझे शान्त करते हो। नहीं, शान्त नहीं हो सकता, दूंगा, तुम्हें अवश्य शाप दूंगा। लो सुनो! जिस प्रकार तुमने मुझे स्त्री के विरह में तड़पाया है उसी प्रकार तुम भी पत्नी के वियोग में महादुःख पाओगे और जिस बानर के रूप को घृणा की दृष्टि से देखकर मुझे दिया है उसी बानर रूप से सहायता चाहोगे:—

फिरोगे ठोकरें खाते महा दुस्तर पहाड़ों में।
कहीं पर्वत, कहीं जगल कहीं वन और उजाड़ों में॥
निराशाओं के बादल हर तरफ घिर-घिरके छायेंगे।
यदि कुछ काम आएंगे तो ये बानर ही आयेंगे॥

विष्णु—नारद जी, मैं आपके शाप को स्वीकार करता हूं:—

न मुझको काम सुख-दुःख से न शोक आनन्द साधन से।
मुझे उस में ही आनन्द है जिसे तुम चाहते मन से॥

गाना

उपकार में तुम्हारे उपकार जानता हूं।
भक्तों को जिंदगी का मैं तार जानता हूं।
इच्छा है जो तुम्हारी राजी हूं मैं उसी में।
आज्ञा में प्रेमियों की उद्धार जानता हूं॥

यह शाप अब तुम्हारा सिर पर मेरे रहेगा।
पालन में मैं इसी के निस्तार जानता हूं॥
मिथ्या न हो सकेंगे नारद वचन तुम्हारे॥
लेना पड़ेगा मुझको अवतार जानता हूं॥

अच्छा नारद जी, अब सावधान हो जाओ। मोह को दूर करो और विवेक तथा वैराग्य-ज्ञान को जगाओ।

[भगवान की कृपा से नारद का क्रोध शांत होना]

नारद—(चौंककर) हैं! यह क्या! मैंने क्या किया! मेरे मन में ऐसे विकार क्यों उत्पन्न हुए! मेरे हृदय में क्रोध की अग्नि क्यों भड़क उठी? (सोच कर) भगवान, मैं भूला, मुझसे बड़ा अपराध हुआ। मुझे क्षमा कीजिए, मेरा शाप निष्फल कर दीजिये :—

न समझा हर जगह व्यापक तुम्हारी ही तो माया है।
तुम्हारा रूप ही सृष्टि के कण कण में समाया है॥
मेरा मन घोर पापी है जो यों अभिमान में आया।
किया जो कुछ विचारा कह गया जो ध्यान में आया॥

विष्णु—नारद जी! तुम कोई चिन्ता न करो। जो कुछ हुआ है मेरी ही इच्छा से हुआ है :—

[दोनों का सम्मिलित गाना]

ना०—जय, जय, जय, दीन दयाल प्रभु!
वि०—जय, जय, जय, सन्त सनातन की।
ना०—जय, जय, जय, नारद जगत-गुरु,
वि०—जय, जय, जय, दीन उबारन की।
ज०—जय जय करुणाकर नाथ हरि, जय जय करुणा सागर स्वामी।
जय जय भय भंजन शोक हरण, जय जय भगवन अन्तर्यामी॥

वि०—जय जय ऋषियों के आदि-गुरु, जय जय पावन संतन स्वामी ।
जय जय मद लोभ-विनाशक मुनि,जय जय नारद सुरपुर गामी॥

ना०—जय, जय, जय, दीन. दयाल प्रभु ।

वि०—जय, जय, जय, सन्त सनातन की ।·····

ना०—महाराज यह मैंने मोह के वश, तुम पर जो दोष लगाया है ।
यह पाप क्षमा कर दो भगवन, चरणों में शीश नवाया है ॥

वि०—तुम क्यों संकोच करो नारद, यह सब मेरी ही माया है ।
जाकर शंकर का जाप करो,क्यों कुशल ध्यान बिसराया है ॥

ना०—जय, जय, जय, दीन दयाल प्रभु ।

वि०—जय, जय, जय, सन्त सनातन की ।

[धीरे-धीरे ड्राप गिरना और आरती पर लीला समाप्ति]

द्वितीय अंक

दृश्य पहला

(परदा जंगल)

[कुशध्वज ऋषि की कन्या वेदवती वैरागिनी वेश में विष्णु भगवान की पात-भक्ति करते और लकड़ियां चुनते दिखाई दे रही है।]

गाना

वेदवती—

समाया हर समय नजरों में वह भगवान रहता है।
उसी की है लगन मन में उसी का ध्यान रहता है॥
बन मैं चेरी चरणों की यही आशा यही इच्छा।
मरण हो उसके चरणों में यही अरमान रहता है॥
जुदाई हर घड़ी की अब मुझे बेचैन रखती है।
विरह में रात दिन हो मौत का सामान रहता है॥
दया कर अब तो हे भगवान! आखिर सब्र की हद है।
कुशल अब क्या रही दिल हर घडी हैरान रहता है॥

अहा! जब से मेरे पिता कुशध्वज ऋषि ने प्रण किया है कि मेरे पति विष्णु भगवान होंगे तब से मैं भी उन्हीं के ध्यान में जीवन बिता रही हूं। सारे संसार से मुंह मोड़कर उन्हीं के चरणों में लौ लगा रही हूं; परन्तु प्यारे ने अब तक कृपा नहीं की! निराशा के अन्धकार में आशा की ज्योति नहीं डाली —

कौन जाने कब तलक स्वामी मिलेंगे आन कर,
और निज सेवा में लेंगे जानकर पहचान कर।
कब तलक यूंही फिरूंगी ठोकरें खाती हुई,
शोक और सन्ताप में जीवन को भरमाती हुई'।

[रावण का प्रवेश]

रावण—(वेदवती को देखकर) अहा !

निर्जन वन में शोभतो ऐसे सुन्दर नार।
जैसे मोती कीच में चमकत है हर बार॥

नहीं, नहीं यह तो इसमें भी अधिक सुन्दर है—

इस निर्जन स्थान में त्यों कामनि का वास !
ज्यों अन्धियारी रैन में चन्द्रदेव का हास॥

वेदवती—क्या विचार रहे हो महात्मन् ?

रावण—(अपने ध्यान में) सुन्दर मुख, विशाल नेत्र, घुंघराले बाल, चौड़ी छाती, मस्तानी चाल और मन को लुभाने वाला अलौकिक रूप, बड़ी ढिठाई के साथ चित्त पर प्रभाव डाल रहा है। इतने आकर्षण एक साथ मिलकर दिल चुराने की चेष्टा कर रहे हैं। निस्सन्देह यदि शारीरिक और मानसिक बल पर विजय पाने वाली कोई शक्ति है तो केवल चन्द्र-मुख की शोभा ! यदि ज्ञानी का ज्ञान, योगी का ध्यान और मानो का मान तोड़ने वाला कोई वीर है तो केवल यह रूप—

जहां चल जाएं तीखे वार इन नैनों के तीरों के।
नहीं कुछ काम दे सकते वहां हथियार वीरों के॥
नजर कैसे न हो संसार की इस देव बाला पर।
निछावर चन्द्र, तारागण हैं जब इस मुख की शोभा पर॥

वेदवती– ज्ञानी पुरुष ! विचारों की उलझन को छोड़िये और अपना तात्पर्य प्रकट कीजिये ।

रावण—ओहो ! भूल गया, बड़ी चूक हुई ! हां देवी, तुम कौन हो ?

वेदवती—मैं ? कुशध्वज ऋषि की कन्या, मार्ग मे भटकी हुई अनाथ बालिका, संसार की बिसराई हुई दीन जोगिन ।

रावण—क्या अभी तक तुम्हारा पाणिग्रहण नही हुआ ?

वेदवती—हो चुका—

सदा से आज तक जिसका कि सब वेदों ने गुण गाया ।
जो विष्णु विश्व का और लोक का आधार कहलाया ।।
जिसे चौदह भुवन और तीन युग भगवान कहते हैं ।
उसी को बस मेरा जीवन, मेरा पतिप्राण कहते हैं ।।

रावण—कल्पना ! झूठी कल्पना ! मृगतृष्णा के पीछे दौड़ने वाली मृगी ! क्या धूप को मुट्ठी में बन्द करने का इरादा कर रही है ? भोली बाला ! क्या उस कल्पित आकार को प्रेम करके आशाओं का स्वप्न देख रही है :—

यह कसौटी होगी पूरी किस तरह विश्वास की ।
आस है कागज के फूलों से तुझे सुवास की ।।
तुझको तडपाती रहेगी सर्वदा आशा तेरी ।
हो नहीं सकती है पूरी यह कभी इच्छा तेरी ।।

वेदवती—इच्छा पूरी हो या न हो परन्तु मैं अपने विचार को नहीं छोड़ सकती । एक बार जिसको अपना पति मान लिया है उससे मुख कदापि नहीं मोड़ सकती—

यह गाढ़ा रंग है जो चढ़ गया हृदय के दर्पण पर ।
यह सच्ची कामना है पार जो उतरेगी साधन पर ।।

मरू इस ध्यान में बेशक मरण इक बार होता है।
सतो नारी का जीवन में परण इक बार होता है॥

रावण—निस्सन्देह, तू अपने ध्यान में मग्न हो रही है, अन्धे विश्वास के कारण जीवन का तत्त्व खो रही है; परन्तु देख, संसार का सुख भी बार-बार नहीं मिला करते; भोग के साधन नित्य इकट्ठे नहीं हुआ करते। जब यौवन की यह झलक चली जायगी तो इस दिन की याद करके बहुत पछताएगी :—

यह शोभा चन्द्र-मुख की यह जवानी और यह जीवन।
यह रंगत. यह चमक, यह रूप यह जादू भरी चितवन॥
पड़ा है धूल में जो मनहरण अनमोल मोती है।
है सुन्दर फूल तू पैरों तले पामाल होती है॥

वेदवती—कामी! असार संसार के सुखों में फंसाकर मुझे सत्मार्ग से विचलित करना चाहता है; नाशवान कामनाओं का रंग चढ़ा-कर मेरे हृदय पर वासना का मैल चढ़ाता है :—

नहीं समझा है अब तक किस कदर है मान अबला का।
परण यह प्राण से प्यारा हमेशा जान अबला का॥
मिले जो राज दुनियां का वचन पर वार दूंगी मैं।
तेरी सोने की लङ्का इक परण पर वार दूंगी मैं॥

रावण—सुन्दरी! होश कर, आखें खोल, तेरे ज्ञान पर काहे का परदा पड़ा है? क्या तुझे दिखाई नहीं देता कि तेरे सामने कौन खड़ा है?

तेरी कोमल जवां से शब्द जो कड़वे निकलते हैं।
ये तीखे बाण हैं जो प्रम की गर्दन पै चलते हैं॥

वेदवती—समय आया है ज्ञानी पाप के रस्ते पे चलते हैं।
अनोखी बात है जो वज्र भी मुट्ठी में गलते हैं॥

रावण—समझा ! मतिमन्द अभागिन बाला ! मैं अब तेरा तात्पर्य समझा ! तू अपनी कुबुद्धि से लाचार है, जो रावण का कहना मानने से तुझे इन्कार है। मूर्ख ! क्या मेरे क्रोध की प्रचण्ड अग्नि में कूदकर अपने आप को स्वाहा करना चाहती है ? जो कार्य मैं अपनी इच्छा से नहीं करना चाहता था उसे ही करने के लिए मुझे विवश बनाती है :—

क्रोध को मेरे समझकर खेलती है खेल तू।
बोलकर कडवे वचन अग्नि पे डाले तेल तू ॥
ऐंठकर रावण से जग में कौन रहने पायेगा।
देखता हूं कौन अब तुझको बचाने आयेगा ॥

[रावण पकड़ने के लिये आगे बढ़ता है, वेदवती पीछे हटती है]

वेदवती—शर्म कर, हिये के अन्धे शर्म कर।

गाना

रावण दुखी को मत दुखा खुद ही मैं बेकरार हूं।
जीवन की आस कुछ नहीं अपना ही आप भार हूं ॥
छेड़ न कर सितम न ढा,शक्ति को अपनी मत जला।
बच के खडा हो बेहया ! शोला हूं मैं शरार हूं ॥
सीने में मेरे प्रेम की अग्नि महान जल रही।
आशाए भस्म हो चुकीं बाकी बचा गुबार हूं ॥
दुखिया को जो सतायेगा, अपनी कुशल गंवाएगा।
बचके कहां को जायेगा, विष को बुझी कटार हूं ॥

रावण—बस बस अब आगे मत बोल—

बहुत कुछ सुन चुका हूं बन्द कर अपनी कहानी को।
इसी अभिमान में खो देगी आखिर जिन्दगानी को ॥

वेदवती – (हंसकर) जिन्दगानी ! क्या जिन्दगानी का मोह दिखाकर ही अपने वश में लाना चाहता है ? क्या मृत्यु से डराकर ही अपनी वीरता का सिक्का जमाना चाहता; जा, ओ चांडाल! यहां से अभी चला जा; यदि कुछ लाज है तो मुझे अपनी सूरत न दिखा :—

देखना पापी का मुंह भी एक भारी पाप है।
इसलिए ही मेरे मन में घोर पश्चाताप है।।
मन दुखाकर दीन का क्या हाथ तेरे आयेगा।
याद रख तुझको तेरा यह पाप ही खा जायेगा।।

रावण—ओह ! इतनी ढिठाई ? इतना अभिमान ! देवताओं के महाराज रावण का यहां तक अपमान :—

जमाने भर की शक्ति जिसके आ चरणों में झुकती है।
तमाशा है उसी योद्धा को अबला नार हंसती है।।

वेदवती—जिसे अबला समझता है वह इक बलवान शक्ति है।
जलाकर भस्म कर देगी यह वह ज्वाला दहकती है।।

रावण—बस, अब नहीं सुना जाता है ! तेरे कटीले शब्दों का अन्त हुआ चाहता है देख, रावण का क्रोध क्या करके दिखाता है।

जो हुआ अच्छा हुआ वह ध्यान ही बेकार है।
देख मेरा हाथ अब तेरे गले का हार है।।

[गर्दन पकड़ लेता है]

वेदवती—नहीं, ऐसी बातों से भी तुझे कुछ हासिल नहीं। दुष्ट ! मेरा शरीर तेरे स्पर्श के काबिल नहीं। (गरदन छुड़ा कर) हाय अन्याई ! मेरी काया ही भ्रष्ट बनाई। तेरे छूने से यह शरीर ही अशुद्ध हो गया। अब यह मेरे इष्टदेव की भेंट

नहीं हो सकता; इसलिए इसे त्याग कर नया रूप धारण करूंगी और उसी से तेरी मृत्यु का कारण बनूंगी :—

बना है सामने मेरे जो तू विकराल की सूरत।
जनकपुर से उठूंगी बनके तेरे काल की मूरत॥

[वेदवती के शरीर से ज्वाला प्रकट होना और रावण का डरते २ धीरे-धीरे जाना] [परदा गिरना]

दृश्य दूसरा

(कैलाश पर्वत की तलहटी)

[रावण अपने विमान में मारीच सहित बैठा हुआ जा रहा है; कैलाश के पास आकर विमान रुक जाता है, रावण को क्रोध आता है]

रावण—हैं ! चलते-चलते अचानक विमान क्यों रुक गया ?—

हुआ है किसका साहस जो मरे पत्थर से टकराकर।
पड़ा है कौन मृत्यु के भंवर में सामने आकर॥
अभी तक क्या कोइ संसार में ऐसा भी योद्धा है।
कि जिसने मार्ग में चलते मेरे वाहन को रोका है॥

मारीच—महाराज ! आपको तो वृथा ही इतना रोष है। मेरे विचार में यह केवल वायु का दोष है।

रावण—वायु ! वायु क्या शक्ति है जो मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर सके ? उसमें इतना साहस कहाँ, जो मेरी इच्छा के प्रतिकूल आकाश-मण्डल में गमन कर सके—

उसके दिल पर है मेरी शक्ति का भय छाया हुआ।
मुद्दतों से मेरे पैरों का है ठुकराया हुआ॥

मारीच—तो फिर इन्द्र की चाल होगी।

रावण—इन्द्र की चाल !

इन्द्र जैसे नीच का मुझसे कोई नाता नहीं।
वह तो मेरे सेवकों में भी गिना जाता नहीं ॥

मारीच—तो फिर मेघ ने ही रास्ते में अड़कर अपने अपमान का बदला उतारा होगा।

रावण—मेघ ! वही मेघ जो मेरी सेवा बजाता है ? पानी छिड़क-छिड़क कर लङ्का की गलियों को ठण्डी बनाता है। क्या कहते हो मारीच ?—

ऐसे कायर भी अगर रोकेंगे मेरी राह को।
कौन फिर ससार में मानेगा ऐसी जाह को ॥

[नन्दी का प्रवेश]

नन्दी—लंकेश !

रावण—क्यों, कौन है ?

नन्दी—मैं हूं शिवजी महाराज का अनुचर, नन्दी।

रावण—नन्दी ! कहो क्या कहते हो ?

नन्दी—महाराज ! इस राड़ को अधिक न बढ़ाइये। यदि इस ओर से नहीं तो दूसरी ओर से निकल जाइये।

रावण—क्यों निकल जाऊं ? क्या मैं चोर हूं जो छिपकर दूसरी ओर से निकल जाऊं ?

उठाकर फेंक दूं जो सामने पर्वत भी आ जाये।
समन्दर खुश्क हो जाये जो मेरा नाम सुन पाये ॥
गिरा डालूं यदि हो लोहे की दीवार भी आगे।
मिटा डालू अगर हो मौत का आकार भी आगे ॥

नन्दी—दानवेश ! कैलाश पर्वत शिवजी महाराज का निवास स्थान

है। इसके ऊपर से किसी प्राणी का गुजर जाना एक प्रकार का अपमान है।

रावण—अपमान ? कैसा अपमान ? किसका अपमान ? क्या शिव भी कोई महान शक्तिमान है, जो उसे अपने अपमान का इतना ध्यान है—

मुंडाकर मूंड, योगी की जमाकर शान बैठा है।
कोई राजा है मानो या कोई भगवान बैठा है॥
न समझी शान मेरी और न देखा दबदबा मेरा।
भला है खेल कोई रोक लेना रास्ता मेरा॥

मारीच—लंकेश ! कहां ध्यान है ? महादेव की महिमा का तो वेदों में भी बखान है।

रावण—होगा, मैं इसकी परवाह करने वाला नहीं। दानवेश ऐसे-ऐसे कपटी धूर्तों से डरने वाला नहीं—

नहीं हूं ग्रास भोजन का मुझे हर कोई खा लेगा।
बताशा भी नहीं जो पायेगा सो मुंह में डालेगा॥
भयङ्कर काल हूं विकराल हूं विषधर हूं काला हूं।
जलाकर भस्म कर दूँगा मैं वह प्रचन्ड ज्वाला हूं॥

नन्दी—अच्छा तो जाइये ! जिस ओर से जी चाहे उसी ओर से चले जाइये।

रावण—क्यों नहीं ! अभी कैलाश को उठाकर समुद्र में डाल देता हूं और मैदान साफ करके अपना रास्ता निकाल लेता हूं—

आ बचाये जो इसे शक्ति कहां आकाश की।
फेंक देता हूं हिलाकर अब जड़ें कैलाश की॥

[क्रोध में उठाने का प्रयत्न करता है किन्तु असफल रहता है]

रा०—हे संसार को आधीन करने वाले अपार बल ! आज तू कहां

सो गया ? हे देवताओं को परास्त करने वाली बलवान भुजाओ ! आज तुम्हें क्या हो गया ?

बढ़ाऊं मैं यदि साहस तो हृदय हांप जाता है।
लगाऊं हाथ जब कैलाश को तो कांप जाता है॥
न जाने हो गया बलहीन दिल बलवान क्यों मेरा।
कराया इस जगह पर आन कर अपमान क्यों मेरा॥

नन्दी—क्यों महाराज! क्या बात है ? अब कैलाश के उठाने में कैसा पश्चाताप है ?

कहाँ है जोर वह जिससे उठाई थी जमीं सिर पर।
कहा हैं तेज वह जिस पर बघारी शेखियां बढ़कर॥

रावण—ठहरो ! एक बार फिर बल लगाने दो। (जोर लगा कर थक जाना) अफसोस !

आ गया तन पर पसीना और यह सरका नहीं।
सच कहा है भाग्य का लिक्खा कोई समझा नहीं॥

नन्दी—बस ! थक गये ! कहाँ है वह शक्ति ? कहां गया वह अभिमान ?

रावण—अभिमान चूर हो गया ! मन का सारा अहंकार दूर हो गया।

हुआ है ज्ञात शंकर की महा महिमा अनोखी है।
अजब लीला तुम्हारी नाथ हमने आज देखी है॥
किया अभिमान जो मैंने यह फल उसका हो पाता हूं।
दया हो नाथ ! अबतो शीश चरणों में झुकाता हूं॥

[रावण का प्रणाम करना, दृश्य बदलना, कैलाश की चोटी पर शिव जी महाराज का बैठे हुए दिखाई देना।]

शिवजी—क्यों लंकेश ! अपनी शक्ति को भली प्रकार आजमा लिया? अब तो अपने अभिमान का फल पा लिया ।

रावण—भोलानाथ ! मैं अहंकार वश आप की महिमा को ध्यान में न लाया; अन्त में अपने किए का फल पाया । हे नाथ ! मुझकर कृपा कीजिए और मेरे विमान को मार्ग दे दीजिए । जय हो ! कैलाशपति आपकी जय हो !

शिवजी—अच्छा जा, जिस ओर से चाहे चला जा । मैं तेरी दीनता पर बहुत प्रसन्न हूं, और ले, तुझे यह चन्द्रहास नामक तलवार देता हूं । यदि तू नित्य इसका पूजन करता रहेगा तो यह तेरी सब प्रकार से रक्षा करेगा; किन्तु यदि एक दिन भी भूल गया तो यह मेरे पास चली आएगी और वही तेरी अन्तिम घड़ी समझी जाएगी ।

रावण—उपकार नाथ ! महा उपकार । आज से मैं सदा आप का दास रहूंगा और आपके वचनों पर विश्वास करूंगा ।

[रावण का विमान पर बैठकर जाना, धीरे-धीरे परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(रावण—दरबार)

[रावण, मन्त्री, मेघनाथ, विभीषण तथा अन्य दरबारी बैठे हैं]

रावण—

कहां है स्वर्ग की पदवी मेरे दरबार के आगे ।
कहां गोलोक की महिमा मेरे विस्तार के आगे ।।
हुआ है आज लंका का जगत में वह 'शखर ऊंचा ।
न कर सकता है मेरे सामने बैकुंठ सर ऊंचा ।।

ब्रह्मलोक से लेकर पाताल तक और बैकुंठ से लेकर मृत्युलोक

नक सब मेरी जय ध्वनि से गुंजार रहे हैं। देवता और गन्धर्व, दानव और दिगपाल, सब मरी जय जयकार पुकार रहे हैं। बड़े-बड़ राजा बड़े-बड़े महाराजा, बड़े-बड़े ज्ञानी और योगेश्वरों का सुख मेरी इच्छा पर निर्भर हो रहा है। इन्द्र लोक मेरे वैभव को देखकर डाह की पीड़ा से जर जर हो रहा है। ससार के धनी लालसा को ललचाई हुई नजरों से मेरे भण्डार की ओर ताक रहे है। दुनियां के अभिमानी पल्ला पसार कर दया की भीख माग रहे हैं :—

सुसज्जित स्वर्ग से बढ़कर मेरा दरबार रहता है।
जगत की वस्तुओं से पूर्ण यह भण्डार रहता है॥
जा चाहूं मैं वही करन से पहले सामने आये।
यदि उंगली उठादूं सिर जमाने भर का झुक जाये॥

मन्त्री—यथार्थ है महाराज! यथार्थ है :—

यहां की शान ही इकदम निराली है जमाने से।
जगत पामाल होता है जरा सा लब हिलाने से॥

रावण—निस्सन्देह! अच्छा अब इस शान को और भी बढ़ाओ; तुरन्त अप्सराओं को बुलाओ और नाच रग का प्रबन्ध कराओ:—

मेरा ही रंग जम जाये रसीली तान के अन्दर;
मेरा ही नाम गूंजे अप्सरा के गान के अन्दर।
मेरे यशगान में बदमस्त कुल दरबार हो जाये;
ध्वनि यह घूंघरू की बस मेरी झंकार हो जाये।

मन्त्री—जैसी आज्ञा महाराज! द्वारपाल! अभी जाओ और गाने वालियों को हाजिर करो।

[द्वारपाल का जाना और अप्सराओं सहित आना]

रावण—साकी !

साकी—अन्नदाता !

रावण—जल्दी आओ !

साकी—बहुत अच्छा श्रीमान !

रावण—(प्याला हाथ में लेकर) अहा !

यह वही लालपरी है जिसे कहते हैं सुरा;
देवताओं को भी जिसका नहीं मिलता है मजा ।।
लोग जिस जाम को बदनाम किये देते हैं;
हम उसी जाम का हठा से सिये लेते हैं ।।

मन्त्री—निस्सन्देह !:—

लोग दुनिया के जिसे नीच नशा कहते हैं ।
हम उसी जाम को दुःखों की दवा कहते हैं ।।

मेघनाथ—साकी ! यहां भी लाओ :—

पान मदिरा के बिना लोग वृथा जीते हैं ।
पाप करते हैं इसे जो भी नहीं पीते है ।।

अप्सरा—

गाना

भर भर पिलादे साकिया फस्ले बहार है ।
बागे जहां में आज गुलों पर निखार है ।।
मस्ती का साज छेड के मदहोश बनादे ।
आंखों में नाचता हुआ साकी खुमार है ।।
तेरी नजर में ऐश की दुनिया छिपी हुई ।
मेरी नजर में सोज का आलम हजार है ।।
परदे से ला निकाल के स्तानापरी को ।
जिसकी अदा पै आज 'कुशा' दिल निसार है ।।

[अप्सराओं का जाना]

रावण—वैसे तो समस्त लोक ही मेरी आज्ञा का पालन करते हैं; सारे राजे-महाराजे मेरी आधीनता का दम भरते हैं। देवता और दिग्पालों को मैंने अपने कारागार में डाल रखा है; दानव और गन्धर्वों का कचूमर निकाल रखा है; परन्तु उनको निकम्मा बिठाने में नीति का अपमान है और फिर राजकोष को भी हानि है। इसलिए मेघनाथ ! तुम अभी जाओ, सारे बन्दियों को अलग-अलग काम बताओ और यदि न करें तो हम तक सूचना पहुंचाओ।

मेघनाथ—जैसी आज्ञा महाराज !

[जाना चाहता है, रावण रोक लेता है]

रावण—हां, जरा ठहरो ! ऋषि और मुनियों से भी कर हासिल करो और उसे राज्य के कोष में दाखिल करो ! साधु, सन्त, महात्मा और धर्मात्मा भी खाली न जाएं, सब मेरे ही नाम की माला फिराएं :—

दिशाओं में मेरी ही कीर्ति और यश की चरचा हो।
मेरा ही नाम हर मन्दिर में गूंजे और पूजा हो॥

मेघनाथ—बहुत अच्छा पिता जी ! आपकी आज्ञा सिर चढ़ाता हू और यह सन्देश समस्त संसार को पहुंचाता हूं :—

हर इक मगरूर को लङ्का का मैं सेवक बना दूंगा।
हर इक दिल पर तुम्हारे नाम का सिक्का बिठा दूंगा॥

रावण—शाबाश ! :—

सुनादो बस हर एक व्यक्ति को यह ऐलान रावण का।
फिरादो हर तरफ संसार में फरमान रावण का॥
दबाओ हर तरह उसको दबे जो न ब्बाने से।
जिसे चाहो मिटा डालो उसे फौरन जमाने से॥

मेघनाथ—ऐसा ही होगा पिता जी !

[सिर झुका कर मेघनाथ का जाना, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

[रावण के कारागार में सारे देवता बन्द हैं]

इन्द्र—शोक महाशोक !:—

कहां मैं स्वर्ग का स्वामी कहां रावण की सेवकाई;
कहां सुरलोक का शासन कहां बन्धन की कठिनाई।
विधाता ! दोष क्या मेरा जो यह संकट उठाता हूं;
महापापी महा क्रोधी का जल भर भर के लाता हूं।

सूर्य—अफसोस !:—

अंधेरा हो गया है हाय अब संसार में मेरे।
नहीं है अब मेरा प्रकाश भी अधिकार में मेरे॥
करूं क्या नित्य रावण नीच की सेवा बजाता हूं।
प्रतिदिन उठके प्रातःकाल उसको सिर झुकाता हूं॥

पवन—हाय ! हाय !:—

किया है बांधकर जंजीर में बेकार रावण ने;
मेरी स्वाधीनना भी छीन ली बदकार रावण ने।
दिशाओं में फिरा करता था ऊधम सा मचाता मैं;
परन्तु आज लंका में फिरूं झाड़ू लगाता मैं।

कुबेर—ओह !:—

कभी अभिमान था परलोक का मैं कोषधारी हूं;
मगर अब द्वार पर रावण के छोटा सा भिखारी हूं।

जिसे संसार सुख और सम्पदा का नाथ कहता है;
वही अब कौड़ी-कौड़ी के लिये मोहताज रहता है।

[सबका सम्मिलित गाना]

करेगा तेरा यह नाश रावण जो पाप इतना कमा रहा है;
सताया जाएगा तू भी जग में जो हमको नाहक सता रहा है।
रहेंगे तेरे न यह सदा दिन, गुजर रही है घड़ी-घड़ी छिन;
तुझे भी घेरेगा शोक इक दिन, जो दिल हमारा दुखा रहा है।
न कोई अपराध था हमारा, न मन में तेरा बुरा विचारा;
न राह में तेरी शूल डारा, क्यों क्रोध इतना दिखा रहा है।
न होगी तेरी यह हुक्मरानी, रहेगी बाकी ही बस कहानी;
यह पाप बनकर आकाशवानी, ध्वनि यह तुझको सुना रहा है।

[कोतवाल का आना]

कोतवाल—(डांट कर) अरे अभिमानियो ! अब भाग्य को दोष देना बिल्कुल बेकार है। क्या तुम नहीं जानते कि यह रावण की सरकार है। राजाज्ञा का इसी प्रकार पालन करते हो, कि आलसियों की तरह पड़े-पड़े पेट भरते हो ?

इन्द्र—मूर्ख ! तुझे स्वाधीनता पाकर इतना साहस हो रहा है ! जरा अन्दर आकर तो देख कि हमारा दम हवा हो रहा है।

पवन—गर्मी इतनी अधिक है कि सांस लेना भी दुर्लभ है।

कोतवाल—तो हम क्या करें ? अपने अपने कर्मों का फल भोग रहे हो।

कुबेर—अरे दुष्ट ! हम पर इतना क्यों रोष है ? जरा बता तो सही कि हमारा क्या दोष है ?

कोतवाल—बस मैं अधिक बकवास सुनना नहीं चाहता। इन्द्र ! दिखला तूने कितना काम किया है ? बेमाता! हजिर कर तूने

कितना दाना दला है ? सूर्य ! क्या तूने राज महल में ठीक प्रकाश नहीं किया ? पवन ! क्या तूने अभी तक लंका की गलियों को साफ नहीं किया ? (देवता चुप रहते हैं) कुछ नहीं सब ने धोका दिया है। जो काम बतलाया था एक ने भी पूरा नहीं किया है। (हन्टर मारना)

देवता—रहने दे अन्यायी ! इस अन्याय को रहने दे। क्या तू नहीं जानता ! कि तुझे भी इस पाप का फल भोगना पड़ेगा ?

[देवताओं और कोतवाल का सम्मिलित गाना]

गाना

देवता—बहुत सही है, सहन करी है, अब नहीं खावें मार।
कोतवाल—रावण को क्या एक घड़ी में भूल गए मुरदार ?
देवता—उस अभिमानी रावण का भी एक दिन आवे काल।
कोतवाल—फिर जो बोले ऐसी वाणी दूंगा शीश निकाल।
देवता—राज काज यह दो दिन का है क्यों करता है मान ?
कोतवाल—तीन लोक में भी नहीं कोई रावण वीर समान।
देवता—निर्दोषों पर जुल्म नहीं है अच्छा यह हर बार।
कोतवाल—जैसी करनी वैसी भरनी क्यों रोते बेजार ?

[हन्टर मारना]

देवता—दया कर ! अन्यायी कुछ तो नया कर।

[रावण का प्रवेश]

रावण—कोतवाल ! कारागार का निरीक्षण कराओ और प्रत्येक बन्दी का किया हुआ काम अलग- अलग दिखलाओ।

कोतवाल—महाराज ! यद्यपि सारे कैदी महा दुष्ट और आलसी हैं परन्तु हम उनसे ही सतर्क और साहसी हैं। पवन समय पर

झाड़ू लगाता है, वरुण अमृत की वर्षा बरसाता है। बेमाता से दाना दलवाया जाता है, इन्द्र से जल भरवाया जाता है। सूर्य और चन्द्र नगरी को प्रकाशित बनाते हैं, कुबेर और यम घोड़ों को लोद उठाते हैं।

रावण—हां ! इन अभिमानियां को कभी खाली न बैठने दिया जाय, हर एक से हमारी आज्ञानुसार कठिन काम लिया जाये। अच्छा हम जाते हैं, फिर किसी समय कारागार का निरीक्षण किया जायेगा और यदि सारा कार्य ठीक न मिला तो तुम्हें कठोर दण्ड दिया जायेगा।

कोतवाल—जैसी आज्ञा अन्नदाता

[रावण का प्रस्थान]

कोतवाल—अच्छा अब सारे बन्दी सावधान हो जाएं और अपने २ कर्त्तव्य-पालन में जी जान से लग जायें।

इन्द्र—

गाना

मंजर क्या है तुझको ओ आसमां बतादे।
दुनिया से क्यों मिटाया मेरा निशां बतादे॥
रक्षा का भार सिर पर लिया था तूने।
अब क्या हुई है आखिर तेरी जुबां बतादे॥
क्या पाप कर्म मैंने अपराध क्या किया था।
क्यों पड़ रही हैं मुझ पर आपत्तियां बतादे॥
अन्याय तेरा मुझ पर कब तक बना रहेगा?
कब तक भरूंगा यों ही मैं सिसकियां बतादे?

[धीरे धीरे परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

(परदा जंगल)

[ऋषि मुनि कीर्तन कर रहे हैं]

ऋषिमुनि—जय रघुनन्दन जय सिया राम
जानकी बल्लभ जय सुखधाम

[मेघनाथ का सेना सहित आना]

मेघनाद—बस-बस, चुप हो जाओ ! यह क्या बकवास है ? न हमारा भय है न रावण की आज्ञा का पास है।

हो गई है घोषण यह विश्व के विस्तार में।
दास लंका का रहे रहना जिसे ससार में॥
अब सिवा रावण किसी की रट लगाना छोड़ दो।
और के आगे जगत में सिर झुकाना छोड़ दो॥

ऋषि-मुनि—मूर्ख ! हम भगवान को छोड़कर और किसी के आगे सिर नहीं झुका सकते। त्यागी पुरुष किसी की आज्ञा मानने को विवश नहीं किये जा सकते :—

यह आज्ञा प्रेमियों पर गृहस्थ्य के हर बार चलती है।
गृहस्थी के लिए ही हुक्म और सरकार चलती है॥
वनों में बैठकर करते हैं हम तो धर्म का पालन।
न हम से हो सकेगा ऐसे दुष्टाकर्म का पालन॥

मेघनाद—करना पड़ेगा ! महाराज रावण की आज्ञा का पालन तुमको अवश्य करना पड़ेगा। सबसे पहले हमें राजकर दो और फिर रावण का नाम लो !

ऋषि-मुनि—राजकर ! कैसा राजकर ? किस का राजकर? क्या हम

खेती करते हैं या व्यापार चलाते हैं, जो आप हमसे राजकर चाहते हैं !

मेघनाद—चुप रहो ! मेरे पास ऐसी बातें सुनने का समय नहीं, वृथा बकवाद से बाज आओ और शीघ्र राजकर लाओ ! नहीं तो कठोर दण्ड पाओगे, और फांसी पर लटका दिये जाओगे ।

ऋषि-मुनि—अरे बाबा ! हमारे पास तो देने को कुछ भी नहीं ।
हमें तो अन्न भी मिलता नहीं निर्वाह करने को ।
कहां से लाएं इ॰ पैसा नहीं है दण्ड भरने को ॥

मेघनाद—तो वैसे ही आडम्बर रचाए बैठे हो ? सारे वन में शोर मचा रखा है, हाहाकार से आकाश सिर पर उठा रखा है ?

ऋषि-मुनि—भाई ! हम तो भगवान का भजन कर रहे हैं। वह पवित्र नाम ले लेकर अपने पापों का दमन कर रहे हैं । जाओ, हमें वृथा न सताओ ।

मेघनाद—एक बार कह दिया कि जल्दी राजकर लाओ नहीं तो रावण के राज्य से निकल जाओ !

ऋषि-मुनि—निकलकर कहां जायें ? और जब दमड़ी भी न हो तो राजकर कहां से चुकायें ?

मेघनाद—लाओ-लाओ ! यदि तुम्हारे पास और कुछ नहीं तो अपना रक्त ही लाओ ।

ऋषि-मुनि—रक्त ! क्या राजकर में रक्त भी लिया जाता है ।

मेघनाद—(सैनिकों से) देखते क्या हो ! प्रत्येक के बाहु में कांटा लगाओ और रक्त से घड़ा भरकर राजकर चुकाओ !

[सैनिकों का ऋषियों से रक्त लेना]

ऋषि-मुनि—ले जाओ ! हे दुराचारियो ! ऋषियों का रक्त भी ले

जाओ ! परन्तु याद रखो कि यह रक्त हो भयकर रूप धारेगा और काल बनकर तुम सबको मारेगा।

मेघनाद—ओह ! देखा जायेगा।

[मेघनाद का जाना और ऋषियों का फिर कीर्तन करना, परदा गिरना]

दृश्य छठा

(रावण—दरबार)

रावण—लोकपालों की मर्यादा भंग हो गई, अहङ्कारियों का सिर नीचा कर दिया गया, देवता भिखारियों की गिनती में आ गये, संसार के छत्रधारी रावण के नाम से घबरा गये। परन्तु अब ! हां अभी मुझे बहुत कुछ करना है :—

स्वर्ग को भी अब विजय करके दिखाना है मुझे।
देवपुर के द्वार तक सीढ़ी लगाना है मुझ॥
सम्पदा गो लोक की पृथ्वी पै लानी है मुझे।
अब असम्भव को भी सम्भव कर दिखाना है मुझे॥
आग में गर्मी न हो और मेघ में गर्जन न हो।
है मेरी इच्छा कि दानव वंश का मर्दन न हो॥

मन्त्री—अवश्य, ऐसा ही होना चाहिए महाराज !

रावण—ब्रह्मा का निश्चित वेदपाठ; विष्णु का शेष-शय्या पर शयन और सुरपति का विशाल वैभव अब मुझे बिल्कुल नहीं सुहाता है, बस अब यही देखना है कि इन्हें नष्ट होने से कौन बचाता है :—

कोप दृष्टि से मेरी बचने न कोई पाएगा।
आयेगा जो सामने बस वह ही कुचला जायेगा॥

देवता, गन्धर्व दान्व और किन्नर कौन है ?
मैं ही हूं लोकों क' स्वामी मुझसे बढ़कर कौन है ॥

[मेघनाथ का प्रवेश]

मेघनाद—(प्रणाम करके) पिता जी ! आप की आज्ञा सारे विश्व में सुना दी गई है। बड़े-बड़ अभिमानियों की गर्दन झुका दी गई है। अब सारे प्रतापो और पराक्रमो हमारे नाम से घबराते हैं; ऋषि-मुनि आपके नाम की ही माला फिराते हैं।

रावण—शाबाश ! मुझे तेरे जैसे सुपुत्र की ही आवश्यकता है। परन्तु हां ! इस घड़े में क्या लाये हो ?

मेघनाद—महाराज ! इसमें ऋषियों और मुनियों का रक्त है, जो उनसे राजकर के रूप में वसूल किया गया है परन्तु चलती बार उन्होंने एक कठोर शाप दिया है।

रावण—वह क्या ?

मेघनाद—यही कि यह रक्त रूप धारेगा और विकराल काल बनकर तुम सबको मारेगा।

रावण—रूप धारेगा ? झूठ ! बिलकुल झूठ ! क्या प्रकृति के नियम के विरुद्ध रक्त से भी जीव उत्पन्न हो सकता है ? नहीं, कदापि नहीं ! ले जाओ और इसे मिथिला पुरी की सीमा में गाड़ आओ !

मेघनाद—जो आज्ञा !

[मेघनाद का जाना, परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(परदा जंगल)

[गोरू पृथ्वी का आना]

गाना

पृथ्वी—

दीनों की हाहाकार पर भगवान आना चाहिये;
फिर बढ़ गया अन्याय जल्दी से मिटाना चाहिये।
तुमने दिया था क्या वचन,पापों का करता हूं हनन;
भगवान वह अपना परण,कुछ तो निभाना चाहिए।
संकट सहा जाता नहीं, मुख से कहा जाता नहीं;
चुप भी रहा जाता नहीं, स्वामी बचाना चाहिए।
अब पाप भारी हो गया, जीवन दुखारी हो गया;
यह घाव कारी हो गया, मरहम लगाना चाहिये।

हाय हाय ! अब तो त्रेताकाल ही कलियुग के सम्मुख हो गया, नीति और धर्म का जीवन कठोर और महान हो गया। गौ और ब्राह्मण सताये जाने लगे; साधु और महात्मा कष्ट उठाने लगे। स्थान-स्थान पर मदिरा और मांस का सेवन होने लगा; अबलाओं और अनाथों का मन विलक २ रोने लगा—

अधर्मी हो गई दुनियां सुनाया भी नहीं जाता।
पड़ा है भार पापों का उठाया भी नहीं जाता॥

हे ब्रह्मा, महेश, अग्नि और कुवेर आदि देवताओ ! मेरी रक्षा करो ! मैं महान दुःख पा रही हूं मेरी रक्षो करोः—

मिटाओ अब मेरा संकट उबारो आके निर्बल को।
नहीं तो जा रही हूं हाय मैं धसती रसातल को॥

[प्लाट का फटना, देवताओं का दर्शन]

ब्रह्मा—हे पृथ्वी ! मन में धीरज धरो ! इस प्रकार हाहाकार न करो हम सब तुम्हारे हित के लिये विष्णु भगवान से प्रार्थना करते हैं। वे अवश्य तुम्हारा सकट दूर करेंगे और भूमि का भार हरेंगे।

पृथ्वी—धन्य हो देवताओ, तुम धन्य हो।

देवता—हे नाथ ! यह दीन पृथ्वी आपकी शरण में आई है। इस का संकट दूर कीजिये और शीघ्र ही भूमि का भार हर लीजिये।

पृथ्वी—सुनो ! हे भगवान ! गोरूप पृथ्वी को पुकार सुनो ! राक्षस मेरे ऊपर घोर अत्याचार करने लगे हैं; सन्त और महात्मा उनके दुराचारों से डरने लगे हैं। अधर्म का भार बढ़ता जा रहा है। न्याय पर अन्याय का मैल चढ़ता जा रहा है :—

अधर्मी दुष्ट और पापी जनों की मैं सताई हूं।
दुखी होकर शरण में आपकी भगवान आई हूं॥

गाना

आओ हे नाथ ! अब तो संकट मिटाने आओ।
हर बार की तरह फिर दर्शन दिखाने आओ॥
अब पाप पापियों का सीमा से बढ़ चला है।
फिर धर्म बाण लेकर इस को घटाने आओ॥
दीनों के नाश पर अब पापी तुले हुए हैं।
मिटना ही चाहता है जीवन बचाने आओ॥
होने लगी है खण्डत मर्यादा वेद की फिर।
गौओं को लग गये हैं जालिम सताने आओ॥

[दृश्य परिवर्तन पर क्षीर सागर का दर्शन]

विष्णु भगवान—पृथ्वी ! :—

पुकारा तूने जब मुझको तो मैं फौरन चला आया ।
समझ ले संकटों का अब तेरे अन्तिम समय आया ।।

गाना

मैं आ रहा हूं देश के उद्धार के लिये ।
पापी के नाश धर्म के प्रचार के लिये ।।
भाता नहीं है पाप का दुनियाँ में फूलना ।
ससार मेरा और मैं ससार के लिये ।।
पृथ्वी, समझ ले कष्ट का अब अन्त हो गया ।
धारण करूंगा तन तेरे उपकार के लिये ।।
वचनों की याद रहती है हृदय में हे कुशल ।
व्याकुल हुआ है मन मेरा अवतार के लिए ।।

पृथ्वी—धन्य हो नाथ ! धन्य हो !

[विष्णु भगवान का अन्तर्धान होना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

(राजा जनक का दरबार)

जनक—मन्त्री जी ! कुछ समय से प्रजा की कुशल सुनने में नहीं आई । यदि कोई नया समाचार हो तो सुनाओ !

मन्त्री—महाराज ! जहां आप जैसे धर्मज्ञ राजा का राज हो वहां प्रजा में अशान्ति कैसे हो सकती है ?

[हाहाकार की आवाज आना]

जनक—हैं ! यह हाहाकार कैसी ? शान्ति में व्याकुलता की पुकार कैसी ?

दुखी है कौन देखो कौन यह फरियाद लाया है।
कोई रोगी है या कोई किसी दुःख का सताया है॥

[प्रजावासियों का आना]

गाना

प्रजावासी—

दुखों के मारे, खड़े हैं द्वारे, पुकार अपनी सुना रहे हैं।
सुनो हे राजा! दुखी है जनता हजारों संकट उठा रहे हैं॥
न मेघ आया न पानी बरसा, आनाज बिलकुल हुआ न पैदा।
हमारे बच्चे मरे हैं भूखे गरीब सब बिलबिला रहे हैं॥
गुजारें हम कैसे जिन्दगानी मिला न पीने को बून्द पानी।
कुशल-तड़प कर हजारों प्राणी ही प्राण अपने गवां रहे हैं॥

महाराज! भयकर अकाल के कारण सब लोग भूखों मर रहे हैं; कई-कई दिन में एक-एक बार खाकर निर्वाह कर रहे हैं। परन्तु अब तो उतना भी सहारा नहीं रहा, बताइये कि हम कहां जाएं किस के द्वार पर अपनी पुकार सुनाएं?

जनक—प्रजा! दीन प्रजा! मुझे तेरी दशा पर रोना आता है; तेरा यह अकाल-पीड़ित दृश्य मुझे खून के आंसू रुलाता है:—

भला किस काम आएगी यह मेरी सम्पदा सारी।
हुई है राज्य में व्याकुल जो मेरे यों प्रजा सारी॥

प्रजावासी—महाराज! इसमें आपका क्या दोष है; हमारे कर्मों के कारण वरुण देवता ही निष्ठुर हो रहे हैं।

जनक—हे अकाल से पीड़ित लोगो! तुम किसी प्रकार न घबराओ। जिसको जिस वस्तु की आवश्यकता हो वह राज्य के कोष से ले जाओ। मैं गुरु जी की सम्मति लेकर इस अकाल का भी उपाय करूंगा और जिस प्रकार होगा प्रजा का संकट हरूंगा।

प्रजावासी—जय हो ! महाराज जनक की जय हो !

[सब का जाना]

जनक—(शतानन्द पुरोहित से) गुरु जी ! भयंकर अकाल पड़ने से सारी प्रजा बिलबिला रही है, लोगों को जान संकट में आ रही है कृपा करके इस आपत्ति को टालने का कोई उपाय बताइये और विचार पूर्वक मेरी शंका को मिटाइये।

शतानन्द—(पत्रा देखकर) राजन् ! इस वर्ष वर्षा के ग्रह प्रतिकूल पड़े हुए हैं। अकाल पड़ने की पूर्ण संभावना है और इससे बचने का केवल यही उपाय है कि आप स्वर्ण का हल बनवाएं और रानी सहित जाकर स्वयं अपने हाथों से चलाएं। लग्न कहता है कि इस विधि से यह संकट अवश्य दूर होगा और वृष्टि होकर अन्न भरपूर होगा।

जनक—बहुत अच्छा महाराज ! यह तो कुछ भी बात नहीं। प्रजा के हित के लिये मैं हर उपाय करने को तैयार हूं।

[सीन ट्रांसफर, खेतों का दृश्य, राजा जनक का रानी सहित हल चलाते दिखाई देना, सीता जन्म परदा गिरना]

तृतीय अंक

दृश्य पहला

(दशरथ-दरबार)

[दशरथ, मन्त्री, गुरु वशिष्ठ, सभासद आदि बैठे हैं, द्वारपाल पहरे पर खड़े हुए हैं]

दशरथ—मन्त्री जी ! संसार में यों तो अनेक राजा राज्य चलाते हैं, किन्तु ऐसे बहुत ही थोड़े होंगे जो प्रजा के हितैषी और धर्मज्ञ समझे जाते हैं। जिस प्रकार प्रजा का प्रेम राज्य की जड़ों को दृढ़ बनाने वाला होता है उसी प्रकार राजा का न्याय राजा को ऊंचा उठाने वाला होता है :—

सदा से एकता के आसरे संसार चलता है।
प्रजा और राज से मिलकर ही कारोबार चलता है॥

मन्त्री—यथार्थ है महाराज !

दशरथ—नीति में कहा है कि जिस शरीर में प्राण नहीं, जिस सरोवर में कमल नहीं, जिस घर में दीपक नहीं, जिस राज्य में राजा नहीं जिस राजा में न्याय नहीं; वह मरघट के समान है।

मन्त्री—इस में क्या सन्देह है श्रीमान !

[श्रवण का गाते हुए प्रवेश]

गाना

श्रवण—

मां बाप की शरण में ही जीवन-सुधार है।
यह आत्मा-उबार है भक्ति का सार है॥

चरणों में उनके बसती है मुक्ति, अपार ज्ञान।
इक बार नाम लेते ही भवसिन्धु पार है॥
सत्कर्म, यज्ञ, योग, तपस्या, दया व धर्म।
माता-पिता की भक्ति ही इन सब का द्वार है॥
माता-पिता की सेवा में बस प्रेम चाहिये।
ससार के मझार से फिर बेड़ा पार है॥

सभासद—पधारिये ! पधारिये ! श्रवणदेव ! पधारिये !

श्रवण—माता-पिता के चरण में प्रथम नवाकर शीश।
याद करूं फिर हृदय में दीन बन्धु जगदीश॥
गुरु वशिष्ठ के चरण में है मेरा आदेश।
नमस्कार है आपको दशरथ अवध-नरेश॥

दशरथ—अहा :—

शुभ दिन, शुभ पल, शुभ घड़ी, शुभ अवसर, शुभ काल।
श्रवण देव मम नगर में आये हुआ निहाल॥

वशिष्ठ जी—निस्सन्देह !

इष्टदेव सम मानकर तज कर कपट विचार।
मातृ-भक्त ससार में श्रवण एक अवतार॥

श्रवण—गुरुदेव !

बड़ा बनकर नहीं आया मैं बालक बनके आया हूं।
तुम्हारे द्वार पर हे नाथ ! याचक बनके आया हूं॥

वशिष्ठ—हां हां कहो पुत्र, अपने आगमन का कारण भी कहो ?

श्रवण—नाथ ! जिस प्रकार बिना पति की पत्नी, बिना श्रद्धा का शिष्य और बिना न्याय का राजा पाप की खान होता है, उसी प्रकार बिना माता-पिता की भक्ति के एक पुत्र का जन्म नारकीय कीड़े के समान होता है। आपको सब प्रकार ज्ञात है कि

मेरे माता-पिता में सदैव का अन्धापन है हे नाथ ! वही मेरे लिये हर समय चिन्ता का कारण है। मैं चाहता हूं कि :—

मिटे जीवन मेरा और आत्मा में उनकी बल आये।
महा रोगी बनूं मैं दूर उनका रोग हो जाये॥
निछावर उन पै हो जाऊ अगर कह दे जरा कोई।
मैं अपने प्राण भी देदूं जो हो उनको दवा कोई॥

वशिष्ठ—परन्तु बेटा ! तुम अपने माता-पिता के अन्धे होने का कारण भी जानते हो ?

श्रवण—नहीं ! जानता नहीं ! परन्तु जानने की अभिलाषा अवश्य है।

वशिष्ठ—अच्छा तो सुनो ! तुम्हारे माता-पिता सदैव के अन्धे नहीं हैं। उनके कोई पुत्र नहीं होता था। उन्होंने पुत्र-प्राप्ति के लिये कठिन तप किया; तब ब्रह्मा जी प्रसन्न होकर कहने लगे कि तुम्हारे भाग्य में पुत्र का मुख देखना नहीं बदा है। हां ! यदि तुम अन्धा होना स्वीकार करो तो हम पुत्र दे सकते हैं। इस पर उन्होंने अन्धा होना स्वीकार करके पुत्र मांग लिया। हे वत्स ! इस प्रकार तुम्हारा जन्म हुआ।

गाना—तर्ज (मिटाओ नाथ अब……)

सुनो बेटा अनोखी इक कहानी;
जरूरी आज जो तुम को सुनानी।
किसी के त्याग का फल पुत्र जानो।
यह बल,यह रूप,यह योवन जवानी॥
किसी के आशरे पर ही बना है
यह जीवन के सरोवर की रवानी

बड़ी आशाओं से मिल कर हुई है।
किसी निर्दोष की रोशन निशानी ॥

श्रवण—अहा ! धन्य है ! आज मुझे ज्ञात हुआ कि मुझ पर माता-पिता का कितना ऋण है। इतनी ममता ! ऐसी उदारता ! पुत्र के कारण पृथ्वी पर सोये, पत्ते खाये, सर्दी गर्मी सही, अन्त में अन्धा होने की शर्त भी स्वीकार की। यह है उपकार, यह है विशाल हृदय; परन्तु मैं भी प्रतिज्ञा करता हूं कि उनकी सेवा में अपने जीवन को बलिदान कर दूँगा; संसार को माता-पिता की भक्ति दिखाता हुआ अपने प्राणों का अन्त कर दूंगा :—

अपनी चिन्ता कुछ नहीं चिन्ता है उनके काम की।
जिस तरह भी बन सके सूरत बने आराम की ॥

वशिष्ठ—धन्य है! संसार को तुम जैसे सुपुत्रों की ही आवश्यकता है।

श्रवण—बस नाथ ! अब विलम्ब न कीजिये, मेरी आशा शीघ्र ही पूर्ण कीजिये :—

है आपकी दया में ही आराम दीन का।
उपकार होगा आपका और काम दीन का ॥
बतलाइये उपाय कि पूरी यह आस हो।
अन्धों की आंख में प्रभु ज्योति का वास हो ॥

वशिष्ठ—हां सुनो ! यदि तुम उनको प्रयाग, काशी, बद्रीनाथ, रामेश्वरम् आदि समस्त तीर्थों की यात्रा कराओगे तो ईश्वर की कृपा से उनको स्वस्थ पाओगे :—

बना देता है मोती बूंद को जो सीप के घर में।
उगाता है जो दाना खाक में और लाल पत्थर में ॥
जो सुख रोगी को देता है सदा और अन्न भूखों को।
दया करके वही देवेगा दो आंखें भी अन्धो को ॥

श्रवण—उपकार ! प्रभु महा उपकार !

अभी सम्वाद यह माता-पिता को जा सुनाता हू ।
मैं खाली हाथ आया और झोली भर के जाता हूं ।।

दशरथ—परन्तु श्रवण कुमार ! अपने अन्धे माता-पिता को सारे तीर्थ किस प्रकार कराओगे ? दो अन्धे प्राणियों को लेकर घन गम्भीर बनों और पर्वतों की कन्दराओं में किस प्रकार जाओगे ?

श्रवण—श्रद्धा के आधार पर ! भक्ति के सहारे पर ! गुरु वशिष्ठ के आशीर्वाद से और आप के प्रताप से :—

बनाकर काठ को कांवड़ उन्हें कन्धे चढ़ाऊंगा ।
फिरूंगा तीर्थों पर अरु उन्हें नाहन कराऊंगा ।।
करूंगा उनका पूजा देव की पूजा समझ कर मैं ।
झुकाऊंगा यह सिर भगवान की प्रतिमा समझ कर मैं।।

सब—धन्य है ! श्रवण कुमार ! तुम्हारी मातृ-पितृभक्ति को धन्य है।

वशिष्ठ—क्यों न हो ?

मात-पिता के चरण में जिसका प्रेम प्रधान ।
संकट सब ससार के उसको सरल महान ।।

[श्रवण का जाना, परदा गिरना]

दृश्य दूसरा

[परदा जंगल, श्रवण के माता-पिता बैठे हैं]

शान्तु—विधाता ! तुम धन्य हो! तुम ने पुत्र रत्न देकर हमारा उद्धार कर दिया :—

मान, मर्यादा, सदन, धन, सम्पदा क्या चाहिये ।
जिसको ऐसा सुत मिल उसको भला क्या चाहिये ।।

श्रवण—(आकर और नमस्कार करके)

मात-पिता मम देवता, सुख-सागर, सुख-धाम।
आज्ञा कारी पुत्र का साष्टाङ्ग प्रणाम॥

शान्तु—जीवित रहो पुत्र ! कहो गुरु वशिष्ठ से हमारे नेत्रों को क्य दवा लाए ?

श्रवण—महाराज !

गया जब आपके हित बनके उनके पास मैं याचक।
बताई है उन्होंने औषधि यह रोग की नाशक।
कराओगे उन्हें सब तीर्थ जो तुम शुद्ध श्रद्धा से।
तो अच्छे नेत्र भी हो जाएंगे ईश्वर को कृपा से॥

शान्तु—परन्तु बेटा ! हम अन्धे हैं, हम बूढ़े हैं, हम निर्बल हैं, तीर्थ-यात्रा कैसे करेंगे ?

श्रवण—तो चिन्ता ही क्या है ? यदि आप अन्धे हैं तो मेरी तो आंखें हैं; यदि आप बूढ़े हैं तो मैं तो बूढ़ा नहीं हो गया हूं; यदि आप निर्बल हैं तो मेरे शरीर में तो बल है। आप को अपने कन्धो पर बिठाकर स्थान-स्थान का गमन करूंगा। अपने हाथ से रसोई बनाकर आपके भोजन का प्रबन्ध करूंगा।

मेरी आंखें दिखायेंगी तुम्हें रस्ता दिया बनकर।
करेंगे हाथ सेवा आप के सेवक पिता बनकर॥
न आये पांव जो ये काम तो इन को जुदा कर दूं।
इशारा हो यदि तो प्राण भी अपने विदा कर दूं॥

शान्त—धन्य हो पुत्र ! तुम धन्य हो !:—

कौन कहता है कि तुम केवल प्रिय सन्तान हो;
आंख की ज्योति हो बेटा देह के तुम प्राण हो।

[श्रवण का धीरे-धीरे अपने माता-पिता को कांवड़ में बिठाना और चलते-चलते गाना]

गाना

श्रवण—

कहे चाहे कुछ भी मुझे कुल जमाना।
तुम्हें मन के मन्दिर में चाहू बसाना॥
बनाकर तुम्हारी अनोखी सी प्रतिमा।
उसी पर सदा भाव का जल चढ़ाना॥
दिखाऊं तुम्हें नेत्र-ज्योति से रस्ता।
यही आरती हो मेरी जगमगाना॥
तुम्हारा ही यशगान हर दम करू मैं।
यही कीर्तन हो मेरा यह ही गाना॥
करूं प्राण बलिदान सेवा में उनकी।
इसी ढंग से हो कुशल स्वर्ग जाना॥

[परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(परदा जंगल)

[राजा दशरथ आखेट खेलते हुए आते हैं]

दशरथ—(अपने साथियों से) बन के भयंकर पशुओं ने मेरी प्रजा को महान कष्ट पहुंचाया है। देखो, उस ओर तुम सब चले जाओ और जो हिंसक पशु मिलें उन्हें मार भगाओ ! इधर मैं जाता हूं।

[सब का जाना, श्रवण का अपने माता-पिता को उठाए हुए आना]

गाना

श्रवण —

मुझको सेवा है मिली जन्म बिताने के लिये।
देह पाई है यह कर्त्तव्य निभाने के लिये॥
जब तलक जीओ करो मात पिता की सेवा।
यही शिक्षा है मेरी सारे जमाने के लिये॥
यज्ञ, तप, दान, दया धर्म का है मार्ग यही।
रास्ता है यही इक स्वर्ग में लाने के लिये॥
ढूंढ आनन्द न संसार के भोगों कुशल।
दिल मिला है यह तुझे दर्द उठाने के लिये॥

माता जी ! पिता जी ! अब हम अयोध्या के निकट आ गए हैं। यहां कुछ देर विश्राम कीजिये और यदि कुछ इच्छा हो तो आज्ञा दीजिए।

शान्तु—अहा विधाता ! आज फिर जन्म भूमि की रज मिली। बेटा! तुम भी थक गए होगे, थोड़ी देर विश्राम कर लो।

श्रवण—नहीं पिता जी ! मुझे बिलकुल भी थकान नहीं है। आप निश्चिन्त लेट जाइये और मुझे चरण सेवा का सौभाग्य दीजिए।

श्रवण की माता—बेटा श्रवण ! प्यास बहुत सता रही है। यदि हो सके तो कुछ जल का प्रबन्ध करो।

श्रवण—अवश्य करूंगा माता जी ! अवश्य करूंगा। आपको उस सामने वाले वृक्ष के नीचे बिठाकर जाऊंगा और कहीं से जल ढूंढ कर लाऊंगा।

[दोनों को वृक्ष के नीचे बिठाकर जाना और जाते-जाते गाना]

गाना

श्रवण –

लेने को जल चला तो मैं लेकिन यह मन अधोर है।
पांव हैं लड़खड़ा रहे कम्पित हुआ शरीर है॥
अच्छा हो यह घड़ी टले भगवन यह पुण्य-फल मिले।
तेरा ही नाम ले चले, रक्षक तु ही अखीर है॥
अशगुन जो कोई हो गया, अन्धो का कौन आसरा।
अपना नहीं है भय कुशल, मन में उन्हीं की पीर है॥

[श्रवण का जाना, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(सरयू नदी का दृश्य)

श्रवण—अहा! निर्मल जल कैसी शोभा दिखा रहा है। नदी का प्रवाह शीघ्रता से उमड़ा जा रहा है!

[श्रवण का नदी में लोटा डुबोना, पटाखे की आवाज पर तीर लगना, श्रवण का गिर पड़ना।]

श्रवण—आह! बाण बड़ा तीक्षण लगा! हाय! माता पिता मेरे तीर लगा! ओह! मेरा प्राण निकला, मैं चला, मैं मरा, माता! माता! पिता! पिता!

गाना

हो गया कैसे समय यह काल ग्राहक जान का।
घाव कारी है लगा सीने में मेरे बाण का॥
हो चुका जीवन मेरा अब सांस पूरे हो चुके।
अब भरोसा एक पल को भी नहीं है प्राण का॥

देख लो माता-पिता अन्तिम समय आकर मुझ।
देखना तुमको मिलेगा फिर न मुख सन्तान का ।।
प्यास व्याकुल कर रही होगी 'कुशल' निश्चय वहां।
हो सकेगा पर न अब प्रबन्ध कुछ जलपान का ।।

हाय ! हाय ! माता-पिता अब तुम कैसे दिन काटोगे ? अब तुम किसके सहारे जीओगे ? आज तुम्हारे हाथों की डंगोरी भी टूट गई; आज तुम्हारे मन को सभालने का सहारा भी नष्ट हो गया। मुझे मरने में पूर्ण शान्ति है किन्तु केवल यही दुःख है कि अब तुम्हें तीर्थ-यात्रा कौन करावेगा ? प्यास से मरते हुओं को जल कौन पिलावेगा ? :—

देख कर किसको करोगे गर्व अपने भाग्य पर।
कौन जल डालेगा ममता की भड़कती आग पर।।

दशरथ—(एक ओर चौकन्ना होकर) हैं! कौन बोला ? किसने पुकारा? किसको बाण लगा ? :—

हो गया क्या जुल्म धोके में किसी की जान पर।
चला गया क्या बाण मेरा उफ किसी इन्सान पर ।।

श्रवण—(कराहते हुए) आह् ! माता ! माता ! पिता ! पिता ! :-

प्यास अब कैसे बुझाऊं हाय मैं लाचार हूं।
किस तरह सेवा करूं मरने को अब तैयार हूं ।।
आ गई एक एक पल अब शंक और सन्ताप की।
मर गया मैं कौन फिर सेवा करेगा आपकी ।।

दशरथ—(श्रवण को देखकर) ! कौन श्रवण कुमार ! अन्धे और अन्धी का प्राणाधार ! निर्बल और दीनों का सहारा ! बूढ़े मां बाप का प्यारा ! हाय अभागे दशरथ ! तूने किसको बाण मारा ?

क्यों बला टूटी न मुझ पर और धनुष पर बाण पर।
तोड़ डाला जुल्म पापी बेकसों की जान पर॥
उफ ! सितम उन बेसहारों का सहारा यह ही था।
हाय उन अन्धों की आंखों का तो तारा यह ही था॥

श्रवण—(स्वयं) आह ! माता-पिता ! अब तुम्हारा आज्ञाकारी पुत्र समाप्त होता है। अब तुम्हारी रही सही आशा भी टूटती है। हाय-हाय ! तुम कैसे धीरज धरोगे ? किसको देखकर मनको शान्त करोगे ?

आत्मा परलोक में बेटे को देखे बिन गई।
इक डंगोरी थी बुढ़ापे की सो वह भी छिन गई॥

दशरथ—(श्रवण से लिपट कर) श्रवण कुमार ! मुझ निर्दयी के शिकार श्रवण कुमार ! बेटा आंखें खोलो, अन्तिम बार अपने प्राण-घातक से बोलो ! देखो ! तुम पर बाण छोड़ने वाला मैं हूं। तुम्हारी पवित्र और कोमल जान पर अन्याय का वज्र तोड़ने वाला मैं हूं। हाय ! हाय ! कैसा अनर्थ हो गया ! कितना अन्याय कर डाला ? :—

दीन दुखिया की तमन्ना किस तरह बरबाद की।
रौंद डाली निर्दयी खेती किसी नाशाद की॥

श्रवण—(करवट लेकर) कौन ! दशरथ ! अयोध्या नरेश दशरथ प्रणाम !

दशरथ—गिर पड़ ! हे आकाश मुझ पर गिर पड़ ! टूट जा ! हे वज्र मेरे सिर पर टूट जा ! खा जाओ ! हे संसार की बलाओ ! मुझ पापी को खा जाओ। :—

सुन रहे हैं कान इस निर्दोष के प्रणाम को।
हाय दशरथ कर दिया बदनाम कुल के नाम को॥

गाना

हाथ छोड़ा हाय दशरथ बेखता की जान पर।
शोक तेरी वीरता पर शोक तेरे बाण पर।
बनके जनता का सहाई होके रक्षक दीन का।
पाप करने लग गया निर्दोष जन के प्राण पर॥
हाय ! वे निर्दोष पानी भी नहीं जिनको मिला।
रोयेंगे कह—कह के क्या अपनी प्रिय संतान पर॥
हाय! वह कच्ची कली जिसने न देखी थी बहार।
सूख कर मुरझा गई अन्याय तेरे बाण पर॥

श्रवण—अयोध्या-नरेश ! इतना पश्चाताप ! महाराज आपने तो जंगली पशु समझ कर बाण मारा है और फिर भाग्य के आगे किसका इजारा है ? आवागमन संसार का अटल नियम है। जो आया है एक दिन उसका निश्चय गमन है। मुझे इस मृत्यु में भी बड़ा आनन्द है, क्योंकि जब तक जिया माता-पिता की सेवा करता रहा और अब मर रहा हूं तो भी माता-पिता की सेवा में ही मर रहा हूं।

हे विधाता ! चाहता हूं अब दया यह आपको।
जन्म लूं जिस योनि में सेवा करूं मां-बाप की॥

दशरथ—श्रवण ! श्रवण ! पितु-भक्त श्रवण ! बेटा ! मैंने तेरा अपराध किया है। अन्धा बनकर तुझ निर्दोष का प्राण लिया है। अब तुम भी मुझसे अपना बदला लो। :—

चुकाते जाओ अपना दण्ड बेटा ! अपने जीवन में।
उठाकर बाण अपने हाथ से मारो मेरे तन में॥

श्रवण—महाराज ! आप क्या कहते हैं क्या कभी ऐसा भी हो सकता है !

दशरथ—तो क्या तुम मुझे दण्ड नहीं दोगे ?

श्रवण—कभी नहीं ।

दशरथ—मुझ अन्यायी से इस पाप का बदला नहीं लोगे ?

श्रवण—कदापि नहीं !

दशरथ—अच्छा तो इतना ही करो कि इस अभागे दशरथ से अन्तिम बार कोई सेवा ही लेलो ।

श्रवण—अच्छा ! यदि आपकी यही इच्छा है तो इतना काम कीजिये कि इस लोटे में जल ले जाकर सामने वृक्ष के नीचे बैठे हुए मेरे अन्धे माता-पिता को पिला दीजिये ।

दशरथ—बहुत अच्छा ! और कुछ ।

श्रवण—हां जरा मेरे निकट आइये और मेरी छाती से यह बाण निकालते जाइये ।

दशरथ—(बाण निकालते हुए) हाय हाय ! पश्चाताप से हृदय जला जा रहा है । कलेजा मुंह को आ रहा है । क्या करूं ? कहां जाऊं ? अपना काला मुख कहां छुपाऊं !

मातृभूमि फट के अपनी गोद में लेले मुझे ।
अन्यथा दुनियां कहेगी धिक तुझे धिक-धिक तुझे ॥

श्रवण—क्षमा ! माता-पिता क्षमा !

हो चुका जीवन मेरा होठों पै अन्तिम सांस है ।
अब तुम्हारे नाम की ही मुझको केवल आस है ॥

[श्रवण का प्राणांत होना, दशरथ का जल लेकर जाना, परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

(परदा जंगल)

[वृक्ष के नीचे श्रवण के माता-पिता बैठे हैं]

शान्तु—श्रवण ! बेटा श्रवण ! कहां हो ? जल्दी आओ। क्या अभी तक तुम्हें जल नहीं मिला ? हाय बेटा ! हमारी आत्मा में अशान्ति बढ़ती जा रही है, आखें तुम्हें देखने को अकुला रही हैं :—

गाना

अन्धे तड़प रहे हैं श्रवण कुमार आजा।
तुझ बिन सकल जगत में है अन्धकार आजा ॥
कित जा छिपे हुए हो ? परदे में कौनसे हो
बेचैन कर रहा है अब इन्तजार आजा ॥
इक-इक घड़ी में सौ-सौ खिदमत बजाने वाले।
अन्धों का कौन है जो कर लेगा प्यार आजा ॥
तुझ बिन तो मर मिटेंगे भूखे ही हम जगत में।
अब कौन देगा लाकर हमको आहार आजा ॥
तेरे विरह में बेटा प्राणों की क्या कुशल है।
आंखें हैं बन्द, दिल है अब बेकरार आजा ॥

श्रवण की माता—बेटा ! बोलो ! जल्दी बोलो। :—

मन हुआ बेचैन अब तोड़ो न मेरी आस को।
ध्यान में बेटा तेरे मैं भूल बैठी प्यास को ॥

दशरथ—(आकर एक ओर) हाय-हाय ! क्या कहूं ? इन बेचारों को किस प्रकार उत्तर दूं ?

हो रहे लौलीन कितने पुत्र के ही ध्यान में।
क्या करूं दूं शान्ति क्योंकर इन्हें भगवान मैं।

! तुम इतनी देर तो किसी काम में नहीं लगाते थे, जब हम बुलाते थे तो दौड़े आते थे। आज कहां चले गए ? आओ जल्दी आओ।

दशरथ—आया, आया, माता-पिता, आपके लिये जल लेकर अभी आया लीजिये जल पी लीजिये।

श्रवण की माता—यह तो श्रवण की आवाज नहीं है। भाई तू कौन है ? और हमारा श्रवण कहां है।

दशरथ—माता जी, आप प्यासी हैं, पहले जल पी लीजिये फिर सब कुछ बता दूंगा।

श्रवण की माता—नहीं ! हम श्रवण के बिना कदापि जल नहीं पीयेंगे। सच बता हमारा श्रवण कहां है।

दशरथ—बताऊं ! कैसे बताऊं ? किन शब्दों में बताऊं ? कौन से मुख से बताऊ ?

गिरी है दिल पै बिजली और जिगर में आग जलती है।
करूं उसका बयां क्योंकर कि मुख से हा निकलती है॥
सहारा हाय तुम दोनों का अब सुरपुर सिधारा है।
तुम्हारे पुत्र को मैंने इन्हीं हाथों से मारा है॥

श्रवण की माता—हाय विधाता ! मैं लुट गई (मूर्छित हो जाना)

शान्तु—हाय भगवान ! यह कैसा वज्र गिरा ? (मूर्छित हो जाना)

दशरथ—क्या देख रहा हूं ? हे ईश्वर ! मैं आज इन अभागी आंखों से क्या देख रहा हूं :—

काटा है तीर से जो लख्ते जिगर किसी का।
हाथों मेरे हुआ है बरबाद घर किसी का॥

(दोनों के मुख पर पानी छिड़क कर) उठो ! उठो ! हे पुत्र के वियोगियों ! श्रवण की मृत्यु पर दो आंसू बहाने के लिये तो उठो :—

रह गया रोना सदा को बेबसी की जान का।
चूम लो इक बार मुखड़ा प्रिय सन्तान का॥

शान्तु—(होश में आकर) अच्छा भाई यह तो बता कि हमारे पुत्र ने कैसे प्राण त्यागे हैं ?

दशरथ—सुनो ! सुनो ! दुखियाओ ! अपने पुत्र के मरने का कारण भी सुनो !

गाना

टेक—महा दुःख पाया, कहा नहीं जाय !

अन्तरा १—दैवयोग से भरमण के हित आज बनों में आया ।
होनी ने पीछा नहीं छोड़ा, ईश्वर की हुई माया ॥
कहा नहीं जाय·····

२—पुत्र तुम्हारा जल लेने जब नदी किनारे धाया ।
जाना उसको पशु बनों का सीधा तीर चलाया ॥
कहीं नहीं जाय·····

३—बाण लगा कारी सीने में सांस लबों पर आया ।
हा माता,हा पिता-पिता हो व्याकुल शब्द सुनाया॥
कहा नहीं जाय·····

४—हा जगदीश्वर! हाय विधाता! कैसा समय दिखाया।
यह अपराध कुशल हुआ स्वामी पाप कर्म की छाया॥
कहा नहीं जाय ·····

शान्तु—याद रख दशरथ ! यदि तू जल लेकर हमारे पास न आता और सच्चा हाल न बताता तो हम ऐसा शाप देते कि तेरा सर्वनाश हो जाता ! अच्छा चल ! अब हमें बेटे की लाश पर ले चल ।

दशरथ—चलिये महात्मन !

[दशरथ का दोनों को हाथ पकड़ कर ले जाना, परदा गिरना]

दृश्य छठा

(सरयू का किनारा)

[श्रवण की लाश पड़ी है, दशरथ दोनों को लेकर आंता है]

दशरथ—लीजिये महात्मन ! यह आप के पुत्र की लाश पड़ी है।

दोनों—(लाश पर गिरकर) हाय बेटा ! तेरी यह दशा ! हम अन्धों को बीच में ही धोखा दे चला।

गाना

टेक—कैसी फूट गई तकदीर।
मन है आज अधीर-कैसी·····

(१) शोक ने घेरा चिन्ता ने खाया,
कम्पित होता शरीर-कैसी·····

(२) बिन तेरे अब श्रवण हमको,
कौन पिलायेगा नीर-कैसी·····

(३) मन को कदापि चैन न आवे,
प्यासे हो त्याग शरीर-कैसी·····

(४) जीवन की सब आशा टूटी,
अब है साँस अखीर-कैसी·····

दशरथ—मात-पिता ! अधिक न कल्पाओ, दुखी मन को समझाओ। जैसे भी हो हृदय को शान्ति दो और श्रवण के बदले मुझे ही अपना पुत्र समझो।

शान्त—अरे अन्याई ! तूने जिस प्रकार हमें प्यारे पुत्र के वियोग में तड़पा-तड़पा कर मारा है, उसी प्रकार यह पाप तेरा भी पीछा न छोड़ेगा; और तू भी अपनी सन्तान के विरह में बिलख-बिलख कर दम तोड़ेगा। हाय ! श्रवण, बेटा श्रवण !

हम भी हुए समाप्त बस आशा के साथ-साथ।
प्राणों निकल चलो अभी बेटा के साथ-साथ।

[दोनों का प्राण त्याग देना]

दशरथ—अनर्थ ! घोर अनर्थ ! एक मृत्यु के साथ तीन मृत्यु, एक हत्या के साथ तीन हत्याओं का पाप ! अभागे दशरथ, आज यह कैसा पाप किया है ? अपने सिर पर इन निर्दोषों का शाप लिया है। हाय ! हाय ! इस पाप का प्रायश्चित किस प्रकार होगा ? इस शाप का निवारण कैसे किया जायगा ? हे जगदीश्वर ! आज यह कैसी माया रचाई ? तकदीर मुझे कहां खीच लाई ! शोक, महा शोक !

गान।

हाय दशरथ क्या तेरी तकदीर ने धोका दिया।
निर्दयी जल्लाद दुनियां में तुझे रुसवा किया॥
कर गया बरबाद घर का घर किसी निर्दोष का।
बाण जो भूले से मैंने इस तरफ सीधा किया॥
दीन रक्षक होके मैं घातक बना निर्दोष का।
पाप था जो कुछ विचारा जो किया बेजा किया॥
बनके अन्धा शाप अपने शीश पर इनका लिया।
हा कुशल यह आप साधन नर्क का पैदा किया॥

[दशरथ का तीनों के दाह संस्कार में लगना, परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(दशरथ-दरबार)

दशरथ—विधाता ! मेरे पास तेरे दयावान हाथों का दिया हुआ राज दरबार है। धन, सम्पदा और अनेक रत्नों से भरा हुआ अतुल भण्डार है, प्रत्येक छोटा-बड़ा मेरी आज्ञा का पालन करता है,

जिसको देखो वही मेरे सुख साधन के लिये मरता है। परन्तु इतना कुछ होते हुए भी मेरे मन को शान्ति नहीं। राज्य क भोग मेरी आत्मा में दीमक लगा रहे हैं। सुख और वैभव मेरे हृदय को बेचैन बना रहे हैं। मेरे विचारों में भागड़ पड़ रही है, मेरी आंखों के सामने अग्नि भड़क रही है :—

जो नहीं सन्तान तो इच्छा-नहीं धन धाम की।
भोगने वाला नहीं तो सम्पदा किस काम की॥
आंख है मौजूद लेकिन आँख का तारा नहीं।
दिल हुआ बेकार जब दिल का कोई प्यारा नहीं॥

मन्त्री—महाराज ! आज आप इतना क्यों अकुला रहे हैं ? ऐसी क्या चिन्ता है जो नेत्र डबडबा रहे हैं।

दशरथ—मन्त्री जी ! क्या बताऊं ? सन्तान हीन होने की चिन्ता चिंगारी के समान मन का जला रहा है। वृद्धावस्था की यह निराशा हृदय में क्लेश रूपी अग्नि सुलगा रही है। आप जानते हैं कि मेरा चौथापन आ गया है जीवन का भरोसा नहीं, न मालूम आयु का दीपक कब बुझ जाय ? मैं सोच रहा हूं कि क्या मेरे प्राणों के साथ सूर्यवंश भी समाप्त हो जाएगा ? क्या मेरे मिटते ही भागीरथ और हरिश्चन्द्र का नाम भी मिट जायगा ?

चमकता था जगत में आज तक भूषण रघुकुल का।
बना अफसोस मैं ही नाश का कारण रघुकुल का॥

मन्त्री—महाराज ! इतने अधीर न हूजिये; और महामुनि वशिष्ठ जी से इसका उपाय पूछिए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे अवश्य कोई ऐसा उपाय बतलायेंगे जिससे आपके सब क्लेश दूर हो जाएंगे।

दशरथ—हां ठीक है ! सम्भव है कि उनकी कृपा से ही मेरा संकट दूर हो जाय :—

यह इच्छा लेके अब गुरुदेव की सेवा में जाता हूं।
जा चिता है मेरे दिल में उन्हे जाकर सुनाता हू ।।

[दशरथ और मन्त्री का जाना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

(गुरु वशिष्ठ का आश्रम)

दशरथ—(आकर) गुरु जी क चरणा मे यह सेवक सादर प्रणाम करता है।

वशिष्ठजो—चिरन्जीव रहो राजन्! आशायें पूर्ण हों! कहो कैसे पधारे?

दशरथ—महाराज दशरथ को बड़े क्लेश ने दबाया है। अब रघुवंश का अन्त होने को आया है। काई दिन में मुझे ससार एसा भूल जाएगा, मानो यहां कभी आया ही नही था। प्रभो! तीन विवाह करके वेद-विरुद्ध कार्य भी कर चुका हू परन्तु मेरी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई :—

चली जाती है आयु क्या भरोसा प्राण का स्वामी।
नहीं देखा है मुखड़ा आज तक सन्तान का स्वामी ।।
करेगा कौन चिता लाश तक मेरी उठाने की।
चिता भी राह देखगी उसे अग्नि लगाने की ।।

गाना

मैं इस संसार से स्वामी! यों ही निष्काम जाऊंगा।
सदा के वास्ते रघुवंश को जग से मिटाऊंगा ।।
मिलेगा यश कभी मुझको न इस संसार मे स्वामी।
गया परलोक तो फिर भी कलङ्कित हो के जाऊंगा ।।
दिया रघुवश के घर में कभी जलने न पाएगा।
मैं इस फूले-फले घर-बार को निजन बनाऊंगा ।।
मिटेगा नाम दुनियां से भागीरथ, अज, हरिश्चन्द्र का।

मैं सारी कीर्ति ही हे कुशल कुल की मिटाऊंगा ।।

वशिष्ठजी – हे राजन् । संसार में सुख के बाद दुख, और दुख के बाद सुख आया करता है । शान्ति के बाद अशान्ति और अशान्ति के बाद शांति हुआ करती है । घबराने की कोई बात नहीं, भगवान की बाहें बहुत लम्बी हैं । वे तुम पर अवश्य कृपा करेंगे :—

मेरा मन कह रहा है पूर्ण यह आशा दिली होगी ।
वह दिन आने हो वाला है कलो मन को खिली होगी।।

गाना

न कर शोक दशरथ तू क्यों रो रहा है ।
तेरे कष्ट का यत्न भी हो रहा है।।
करगे दया तुझ पै करुणा के सागर ।
निराशा में क्यों प्राण तू खो रहा है।।
समय आ गया है मिटेगी यह चिन्ता ।
तेरा भाग्य-दिनकर उदय हो रहा है।।
वही काम कर जो बताऊं कुशल मैं ।
जगेगा नसीब जो अब सो रहा है।।

दशरथ—बतलाइये ! महामुनि ! ऐसा उपाय शीघ्र ही बतलाइये !

वशिष्ठजी—हे राजन सुनो ! किसी प्रकार शृंगी ऋषि को बुलवाओ और उनके द्वारा पुत्रेष्ट यज्ञ कराओ ।

दशरथ—जो आज्ञा महाराज ! (मन्त्री से) मन्त्री जी ! आप चले जाइये और अपने गुण में निपुण अप्सराओं को भेज कर शृंगी ऋषि को बुलवाइये ।

मन्त्री—जैसी आज्ञा श्रीमान !

[मन्त्री का जाना परदा गिरना ।]

दृश्य नवां

(परदा जंगल)

[शृंगी ऋषि एक वृक्ष पर उलटे लटके हुए तपस्या कर रहे हैं, दो अप्सरायें आकर नाच रंग दिखाती हैं।]

अप्सराएं— **गाना** (तर्ज—ला पिलादे भर भर साकी)

नैन चलाएँ बाण तान कर अबरू गजब कटारियां ..... नैन
मस्तानी—हुई दिवानी
जान; अजान; महा आ-आ-आ ..... नैन
नजर मिला के चल दिए मैं देखती रही।
सीने पै तीर चल गए उनकी हंसी रही॥
मस्तानी—हुई दिवानी
जान; अजान; महा आ-आ-आ ..... नैन

अप्सरा नं० (१)—अरी! यह मुनि तो बोलते भी नहीं।

अप्सरा नं० (२)—बहिन! इन्हें जरा रूप का झलक दिखाओ और कोई और सुन्दर राग सुनाओ।

गाना

टेक—कैसा लागा ध्यान-मुनि जी कैसा लागा ध्यान।
सुध बुध कुछ दुनियां की नहीं; चिंता शाक नहीं मन माहीं
क्या-क्या हाल बखान-मुनिजी-कैसा लागा···ध्या···अ···आन
टुक देखो इक नजर उठाकर-रूप लखो यह ध्यान भुला कर
अनुपम रूप महान-मुनि जी-कैसा लागा .....
विधना ने संसार बनाया कुशल रचो है अनुपम माया
कुछ तो कीजे ज्ञान-मुनि जी-कैसा लागा .....

[शृंगी ऋषि का वृक्ष से उतर कर अप्सराओं के पीछे चलना, परदा गिरना।]

दृश्य दसवां

(दशरथ दरबार)

[अप्सराओं का शृंगी ऋषि सहित आना और छोड़कर चले जाना]

दशरथ—(खड़े होकर) ऋषिराज के चरणों में दशरथ का प्रणाम !

शृंगी ऋषि—चिरंजीव रहो राजन् ! कहो यह ढोंग किस लिए रचाया है और हमें यहां क्यों बुलाया है ?

दशरथ—महात्मन् ! मेरा सकट आप के बिना दूर नहीं हो सकता; मैं आप से अनुग्रह की भीख मांगता हूं। हे प्रभो ! मुझ पर इतनी कृपा कीजिये कि मेरे हित के लिए पुत्रेष्ट यज्ञ करा दीजिए।

वशिष्ठजी—ऋषि राज ! दशरथ सन्तान हीन होने के कारण महा दुखी है। रघुवंश की कीर्ति नष्ट होने जा रही है। इतनी कृपा कीजिए कि पुत्रेष्ट यज्ञ कराकर सूर्यवश को नष्ट होने से बचा लीजिए।

शृंगी ऋषि—वशिष्ठ जी ! मुझे आज्ञा स्वीकार है। हवन की सामग्री मंगाइये और यज्ञ का मंडप सजाइये।

दशरथ—महाराज ! पहले से ही सब कुछ हो चुका है केवल आपकी कृपा की देर है।

[दशरथ का सबके सहित यज्ञ-मण्डप में जाना, यज्ञ होना और अग्नि-देव के दर्शन]

अग्निदेव—(प्रकट होकर और चरू देकर)

राजन महा प्रसन्नता मन में भई है आज।
करुणा से गुरुदेव की पूरे हों सब काज॥
राज-रानियों को अभी दीजो चरू खिलाय।
देता हूं तुमको वचन मन वांछित फल खाये।

[अग्निदेव का अन्तर्धान होना, दशरथ का चरू लेकर महल में जाना परदा गिरना]

दृश्य ग्याहरवां

परदा महल (प्लाट)

[कौशल्या दर्द से बेचैन है]

कौशल्या—कृपा करो ! हे भगवान कृपा करो ।

करो भरपूर मेरो गोद, अब संकट हरो स्वामी ।
बहुत कुछ हो चुकी बेचैन बस करुणा करो स्वामी ।।

[प्लाट का फटना और चतुर्भुजी भगवान का दर्शन]

विष्णु भगवान— देख माता ! आज तेरी आशाओ की पूर्ति का दिन है । सावधान हो और देख !

कौशल्या—देखूं ? किस प्रकार देखूं ? हे नाथ ! इन धुंधली आंखों में आपकी अनुपम छवि किस प्रकार देखू ।

गाना

पाया नहीं है भगवान माया का पार तेरी ।
करते हैं बन्दना जन-सुर बार-बार तेरी ।।
सुन्दर विशाल लोचन बनमाल कठ में है ।
वेद और पुराण निश दिन करते पुकार तेरी ।।
प्रकटे हो हित के कारण भक्तों के भक्तवत्सल ।
विख्यात है जगत में महिमा अपार तेरी ।।
बालक का रूप बनकर लीला दिखाओ स्वामी ।
जाती नहीं है देखी सूरत अपार तेरी ।।

हे अनन्त भगवान ! मैं आपकी स्तुति किस प्रकार करूं ? आप दया और गुणों के समुद्र हैं । माया से रचे हुए अनेक ब्रह्मांड आपके रोम-रोम में रमे हुए हैं ।

नहीं आता किसी के ध्यान में विस्तार माया का ।
रचा है आपने अद्भुत प्रभो संसार माया का ।।
तुम्हीं बस जानते हो नाथ केवल अपने भेदों का ;

सुना है नेति नेति कहते आखिरकार वेदों को ॥

विष्णु भगवान— गाना

(लावनी)

दोहा —कोशल्या माता सुनो ! अब इक सत्य विचार ।
वचनों के कारण किया धारण यह अवतार ॥
जो पूर्व जन्म में बीता है सभव हैं तुमको ध्यान नहीं ।
तुम सतरूपा कहलाती थीं जिसका अब तुमको ज्ञान नहीं।
थे शम्भुमनु तेजस्वी सब बलवान जो स्वामी तुम्हारे थे ।
वे न्यायशाली कहलाते थे और जनता के अतिप्यारे थे ॥
संसार असार समझकर तुम ससार का पल में छोड़ चले ।
बनखंड में जाकर तप किया ससारसे मुंहको मोड चले ॥
जब हुई तपस्या पूर्ण तो मैं दर्शन तुमको देने आया ।
मांगा-मांगा क्या इच्छा है,लेला जो कुछ मन का भाया ॥

दोहा—हाथ जोड़ विनती करा तुमने हे भगवान ।
पुत्र हमें इक दीजिए गुण में आप समान ॥
वचनों के कारण दिया दर्शन यह इकबार ।
अब बालक बनकर करूं लीला अपरम पार ॥

[अन्तर्धान हो जाना बालक के रोने की आवाज आना परदा गिरना]

दृश्य बारहवां

(दशरथ दरबार)

[दरबार लगा हुआ है, बादी आकर पुत्रों के जन्म का समाचार देती है |

दासी— गाना

विधाता ने तुम्हें राजन खुशी का दिन दिखाया है ।
मुकद्दर बाद मुद्दत के तुम्हारा रग लाया है ॥
मिटे हैं कष्ट सब मन के हुई हैं पूरी आशाएं ।
महा आनन्द तीनों राज—महलों में समाया है ॥

हुए हैं चार सुत पंदा अनोखी युग घड़ी आई।
नगर को आज इस उत्साह ने सुरपुर बनाया है॥
फल फूलें रहें आनन्द ये सुकुमार दुनिया में।
कुशल ने हर्ष और आनन्द में यह राग गाया है॥

दशरथ—अहा देव! तुम बड़ न्यायशाली हो, तुम्हारी बाहें बहुत लम्बी हैं; तुम्हारे भंडार में किसी वस्तु की कमी नहीं। तुम्हारी कृपा से आज मैं भी संसार में बसने योग्य हो गया; आज मेरे अंधेरे महल में भी प्रकाश दिखाई पड़ने लगा; तुम धन्य हो! तुम धन्य हो—

सुनी तुमने ही आखिरकार यह फरियाद सेवक की।
जगत में रह गई बाकी प्रभो अब याद सेवक की॥

मन्त्री—निस्सन्देह महाराज! आज का दिन आप के लिये, हमारे लिए और समस्त प्रजा के लिए बड़ा ही शुभ दिन है।

दशरथ—मन्त्री जी! ब्राह्मणों को धन और वस्त्र आदि का दान कराओ, नगर में आनन्द के रंग जमाओ, प्रत्येक गली कूचे में पताका और बन्दरवार बन्धवाओ। दीन भिखारी जो आयें मुंह मांगी मुराद पायें। राज्य के समस्त कर्मचारियों को उन्नति दी जाय और घर-घर में रोशनी की जाए।

मन्त्री—महाराज! आपकी आज्ञा का यथार्थ रूप से पालन किया जाएगा!

दशरथ—ठीक है! अच्छा अब मैं गुरुदेव की सेवा में जाता हूं और बालकों का नाम करण संस्कार कराता हूं।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य तेहरवां

(परदा—महल)

[चारों राजकुमार पालने में झूल रहे हैं, दशरथ गुरु वशिष्ठ सहित आते हैं]

दशरथ—गुरुदेव ! यह सब आपकी ही कृपा का फल है जो भगवान ने मुझे चार पुत्र दिये हैं। कृपा करके इनका नाम करण संस्कार करा दीजिए।

वशिष्ठजी—हे राजन, तुम बड़े भाग्यशाली हो। भगवान ने तुम्हें अलौकिक पुत्र-रत्न दिये हैं। इनके नाम भी अनेक और उपमा रहित हैं; परन्तु फिर भी मैं अपनी बुद्धि अनुसार विचार कर कहता हूं। ये जो आनंद के समुद्र और सृष्टि के प्रत्येक परमाणु में रमण करने वाले हैं इनका नाम राम होना उचित है। ये जो सब जगत का पोषण और भरण करने वाले हैं इनका नाम भरत होना चाहिये। और जिनको स्मरण करने से ही शत्रुओं का नाश होता है वे शत्रघन तथा जो अच्छे लक्षणों के स्थान और राम के प्यारे हैं उनका नाम लक्षमण प्रसिद्ध होने योग्य है।

दशरथ—धन्य हो प्रभो !

[दशरथ और वशिष्ठजी का जाना, बधाई वाली स्त्रियों का आना और गाना]

गाना

आई है कैसी बाहर अजो देखो—देखो।
रेशम की डोरियों में झूले पड़े हैं।
झूले हैं राजकुमार—अजी देखो……
आशा विधाता ने मनकी की है पूरी
जीवें सदा सुकुमार—अजी देखो ……
महल अटारी फूल सजावें।
गावें बधाई नत द्वार—अजी देखो……

[गाना-बजाना होना, दृश्य-परिवर्तन पर नगर में सजावट और रोशनी का दिखाई देना आरती पर ड्रापसीन]

चौथा अंक

दृश्य पहला

(परदा जंगल)

[राक्षसों का उत्पात]

गाना (तर्ज—मेरे मौला बुलाले)

टेक—कोई दुनियां में मानो हमारा नहीं।
मारीच—ससार मेरे हुक्म पं चलता है रात-दिन ॥
रहती है मौज बारह महीने व सात दिन ॥
हम ने रजो अलम तो सहारा नहीं-कोई·····

सुबाहु—मेरी तो वीरता ही निराली जनाब है।
आंख मिलाए हम से कुशल किस की ताब है ॥
मेरी शक्ति के आगे इजारा नही—कोई·····

मारीच—संसार का कोई मूर्ख राजा घर बैठकर ही अपनी आज्ञा चलाता है और कोई अपनी सीमा में आतक जमाता है; परन्तु हमारी सरकार भूमण्डल के सभी भागों पर चलती है और हमारा नाम सुनते ही बड़े-बड़े वीरों की छाती दहलती हैं। हमारे सामने आते ही शेरों की काया धड़कती है और काल की नस फड़कती है।

सुबाहु - क्यों नहीं ! आज ससार में हम जैसा कोई वीर नहीं; जो हमारे पराक्रम से न डरता हो ऐसा कोई धीर नहीं।

राक्षस १—बिल्कुल ठीक ! (बोतल दिखाकर) यह सब इस रंगीन

पानो का असर है कि जिसने एक बार पी पिला उसका सारी दुनियां को डर है।

मारीच—हां-हां लाओ-लाओ ! सब एक-एक बोतल चढ़ाओ !

सुबाहु—अरे एक बोतल में क्या होता है ? यहां तो दो चार मटकों में भी कुछ ही भला होता है।

राक्षस २—अरे सारी तुम ही चढ़ा जाओगे तो हमें क्या खाक पिलाओगे।

[सबका मदिरा पीना और गाना]

गाना (तर्ज—मन मैल मिटे···)

भर जाम पियो, सरशार बनो, है प्याला सबसे आला।
जब रंग जरा जम जावे, दुख दर्द पास नहीं आवें,
दुनियां जन्नत बन जावे;
खता औसान, नहीं पहचान, बने हैरान, महा मस्ती मतवाला
भर जाम·····

मारीच—अरे, अब यहां बैठे-बैठे प्याले ही चढ़ाओगे ? या कुछ इधर-उधर की घातें भी लगाओगे ?

राक्षस ४—हां-हां कहो कहो क्या विचार है ? क्या कोई नया शिकार है ?

मारीच—चलो अब जरा इधर-उधर चक्कर लगाएंगे और कोई नई चिड़िया जाल मे फंसाएंगे।

राक्षस—तो फिर चलिए किधर का इरादा है ?

सुबाहु—वह देखो सामने की ओर धुआं उड़ता नजर आ रहा है, मालूम होता है कि कोई मूर्ख तपस्वी यज्ञ रचा रहा है। चलो जरा उसी ओर चक्कर लगाए और उस पाखण्डी को मूर्ख बनायें।

सब—हां-हां चलो, चलो !

[सबका जाना, दृश्य-परिवर्तन पर मुनि विश्वामित्र का यज्ञ करते नजर आना]

राक्षस—(हंस कर) वाह ! वाह ! अच्छे रहे; सबसे पहले बूढ़े बाबा के ही दर्शन हुए।

सुबाहु—अरे पहले इनकी कुशल मगल तो पूछ लो !

राक्षस—क्यों बाबा ! चित्त तो प्रसन्न है ? यह धूनो किसो लिए लो जा रही है ? क्या सिर पर कोई भूत चढ़ गया है ।

मारीच—ओ हो ! बड़े मौनधारो मुनि हैं ! बोलते भी नहीं; चुप्पी साधे बैठे हैं।

राक्षस—आखिर इस पर क्या भूत सवार है जो इसे बोलना भी दुश्वार है।

राक्षस २—अरे भाई ! बेचारा बहुत दिनों का बीमार है इसलिए जबान हिलाने से भी लाचार है।

मारीच—क्यों बुड्ढे बाबा ! ऐसी क्या धुन समाई है जो हमारी ओर अब तक आंख भी नहीं उठाई है !

राक्षस १—ओहो ! इतने नखरे तो परी भी नहीं करती।

सुबाहु—अरे गुरु घण्टाल ! कुछ तो बोल चाल, हमें तो तेरी दाढ़ी पर बड़ो दया आती है. भोली भाली सूरत मन को बहुत भाति है, सच बता क्या तुझे भी शराब चाहती है।

राक्षस १—बस-बस ! बिलकुल यही बात है। लाओ-लाओ एक आध बोतल इसे भी पिलाओ।

राक्षस २—लो बाबा ! तुम भी इस लाल परी को मुंह लगाओ ! (बोतल आगे करना)

मारीच—अरे ! बोल-बोल ! जरा तो मुंह खोल ! हटा, हटा यह क्या लिये बैठा है? इसे सामने से उठा! (हवन कुंड फैंक देना)

राक्षस ४—(सामग्री उठाकर और सूंघकर) इसमें क्या है भोले बाबा ! ओह बड़ी दुर्गन्धि आ रही है जो नाक में चढ़ी जा रही है (फेंक देना)।

सबाहु—(कन्धे हिलाकर) बोल-बोल, अब तो आंखें खोल !

[विश्वामित्र का क्रोध में उठना]

विश्वामित्र—दुराचारिया ! इतना अन्याय ! इतना पाप ! साधुओं को भी तंग करने लगे ; ऋषियों और मुनियों के यज्ञ भी भंग करने लगे :—

किया है इस कदर पाखण्ड का व्यवहार दुनियां में ।
लगे करने यहां तक घोर अत्याचार दुनियां में ।।
हुई वंसे तो इस सन्ताप से व्याकुल प्रजा सारी ।
परन्तु सन्त पुरुषा की भी अब आने लगी बारी ।।

[राक्षसो का भाग जाना]

गाना (तर्ज – रचा क्या बहार तूने···)

कैसा हवा चलो यह कलियां बनो शरारे,
मद्धम पड़ हैं देखा आकाश के सितारे ।
अग्नि का रूप है जल, अमृत बना हलाहल,
लगते हैं फूल कोमल, जलते हुए अगारे ।
दुष्कर्म में समोया, निन्द्रा में धर्म सोया,
पापों ने जग डबोया, आशा खड़ी पुकारे ।
दुनिया लगी बदलने, साहस लगा पिघलने,
नया लगा मचलने, हटने लगे किनारे ।

(स्वयं) अब इन दुष्टों के नाश का उपाय करना भी परम आवश्यक हो गया है । यदि इन का अन्त न होगा तो ऋषि लोग महादुख पाएगे महात्माओं को यज्ञ करने दुर्लभ हो जाएंगे । जगदीश्वर की कृपा और योगबल की शक्ति से इन को मैं भी नष्ट कर सकता हूं परन्तु क्रोधित होने में मेरा आत्मबल क्षीण होता है । इसलिये कोई ऐसा सहज उपाय करना चाहिये कि इन दुराचारियों का भी दलन हो जाए और मेरी तपस्या में भी विघ्न न आए (विचार करके) हां, ज्ञान द्वारा सिद्ध हुआ कि सूर्यवंश में निर्गुण ब्रह्म का अवतार

हो चुकी है। भगवान का अवतारी रूप दुष्टों के हनन और सन्तजनों के रञ्जन के लिये ही हुआ करता है, इसलिये यही उचित है कि महाराज दशरथ के पास जाकर भगवान राम और लक्ष्मण का मांग लाऊं। उनके शुभ दर्शन से मैं भी कृतार्थ हूंगा और ये दुष्ट राक्षस भी सहज मे ही नष्ट हो जाए गे:—

अभी जाकर रघुकुल का मैं द्वारा खटखटाता हू।
अभी जाकर महाराजा को दुख अपना सुनता हूं॥
मिटेगी मन की चिन्ता और जन-उद्धार भी होगा।
हनन दुष्टों का होगा धर्म को उपकार भी होगा॥

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य दूसरा

दशरथ—दरबार

[दशरथ अपने मन्त्रियों, चारों पुत्रों तथा अन्य कर्मचारियों सहित विराजमान हैं)

दशरथ—तुही रक्षक तुही पालक तुही करतार दुनियां का।
तेरे आधार पर चलता है सब व्यवहार दुनियां का॥
सदा से है तू ही सकट का मेटनहार दुनिया का।
किया है आज तक तूने ही बस उपकार दुनिया का॥
तुही दुख दर्द नाशक है तुही दीनो का पालक है।
तुही है आस निर्बल की तुही प्राणो का रक्षक है॥

मन्त्री—सत्य विचार है महाराज!:—

वही बन्धु, सखा, स्वामी, उसी का सच्चा नाता है।
जगत को जो भी मिलता है उसी के घर से आता है।

दशरथ—अच्छा सारे कर्मचारी अपना-अपना व्योरा सनावें।

मन्त्री—महाराज:—

उम्र आराम से जनता की बसर होती है।
दीन दुखिया की बड़ सुख में गुजर होती है॥

कर्म शुभ होते हैं और कोई बुरा काम नहीं।
राज्य में आप के सकट का जरा नाम नहीं॥

महाराज ! समस्त प्रजा बड़े आनन्द में दिन बिता रही है; राज्य के शुभ कर्मों और नीति पालन को देखकर सतयुग को याद आ रहा है। किसी को अधिकारों से वंचित नही किया जाता है। प्रत्येक के साथ न्याय का व्यवहार किया जाता है।

सेनापति—महाराज की सारी सेना राज्य के लिये जान देने को तैयार है, हर एक सैनिक पूरा आज्ञा कार है।

कोषाधारी—कोष कुवेर के भण्डार के समान भर-पूर है, आय और व्यय का लेखा सब प्रकार अनुकूल है।

भूमि प्रबन्धक—कृषक लोग निश्चन्त होकर अपना काम कर रहे हैं और राज्य-सेवा का दम भर रहे हैं। सरकारी कर बड़ी सावधानी और नर्मी से प्राप्त किया जाता है, प्रत्येक को पूरा-पूरा आराम दिया जाता है।

कोतवाल—समस्त प्रजा के लिये पूरी आसानी है; बच्चे-बच्चे के मुख पर महाराज के न्याय की कहानी है। चोर, उचक्के और डाकू का नाम नहीं; लूटमार और उपद्रव का कहीं काम नहीं।

दशरथ—बहुत सुन्दर ! अच्छा सन्तान-प्राप्ति के उपलक्ष में सारे कर्म चारियों को इनाम दिया जाए और जो सवाली आए उसके सवाल को बिना रोक टोक पूरा किया जाए।

मन्त्री—जैसी आज्ञा महाराज !

कोषाधारी—

दर खुला है आज तो यह मांग ले आकर कोई।
पाएगा मन को मुरादें आज बेशक हर कोई॥

भिखारी (१)—(कन्या के साथ आना)

दीन दुखिया ब्राह्मण हूं और यह कन्या मेरी।

रात-दिन रहती है चिन्ता ब्याह की इसके बड़ी ।।
आप की करुणा से बेड़ा पार होगा दीन का ।
दीजिये कुछ धन मुझ उद्धार होगा दीन का ।।

भिखारी (२)—

गिर गया घर सारा राजन, हाय इस भोचाल में ।
आ पड़ी सिर पर मुसीबत फंस गया जजाल में ।।
एक दाना भी नहीं है हाय खाने के लिये ।
किस जगह मैं जाऊ अब जीवन बिताने के लिये ।।

भिखारी (३)—

कुछ न पूछो हाल राजन् ! हाय इस लाचार का ।
पड़ गया डाका लूटा सामान कुल घर बार का ।।
अब ठिकाना भी नहीं है हो रहा बे हाल हूं ।
दीजिये कुछ धन मुझे निर्धन, दुखी, कगाल हूं ।।

भिखारी (४)—

क्या बताऊं किस तरह मेरा सफाया हो गया ।
फाटके में घर तलक अपना पराया हो गया ।।
पास अपने बैठने मुझको कोई देता नहीं ।
नाम भी इज्जत से मेरा अब कोई लेता नही ।।

[सब भिखारियों का बारी बारी धन लेकर जाना]

द्वारपाल—(सिर झुकाकर)

दुनिया में महाराज का बढ़े सदा इकबाल ।
सदा समागम हर्ष का जनता रहे निहाल ।।
दैवयोग से आए हैं विश्वामित्र कृपाल ।
द्वारे पर आसन जमा बैठ गए महिपाल ।।
कुछ बिगड़े आते नजर चेहरे के आसार ।
क्रोधित से लगते प्रभो ! नेत्र हुए अंगार ।।
आज अनोखी है दशा कुछ वरणी नहीं जाय ।

आज्ञा हो जो दास को लावे अभी बजाय ॥

दशरथ—ओहो ! क्या महर्षि विश्वामित्र जी पधारे हैं !

द्वारपाल—हां महाराज !

दशरथ—तो मन्त्री जी ! आप शीघ्र ही जाइये और उन्हें आदर सहित ले आइये ।

मन्त्री—जैसी आज्ञा महाराज !

[मन्त्री का जाना और विश्वामित्र सहित आना]

दशरथ—(सिंहासन से उतर कर और प्रणाम करके) ऋषिराज के चरणों में सादर प्रणाम !

विश्वामित्र—चिरन्जीव रहो ! कल्याण हो

दशरथ—बतलाइये, महाराज ! सेवक के लिये कोई सेवा बतलाइये!

गाना

हे राजऋषि ! क्या कारण है ? क्यों अकुलाए से आये हो ?
क्यों रंगत है फीकी मुख की, क्यों क्रोधित हो गरमाये हो ?
किस शोक ने शोक दिया स्वामी! किस दुख के कारण हो व्याकुल ?
किस बात की चिन्ता मन में है ? क्यों शील-भाव बिसराये हो?
मैं दास सदा से चरणों का हूं आज्ञाकार कहो स्वामी !
किस दुष्ट ने तुमको कष्ट दिया ? क्या इच्छा लेकर आये हो?
क्या दुष्टाचार बढ़ा स्वामी ? क्या मानुष पापाचारी बने ?
भरते हो लम्बे सांस प्रभो ! क्यों चिन्तित हो घबराये हो ?

विश्वामित्र—

गाना

हो राजऋषि या ब्रह्म ऋषि या ज्ञानी धूल रमाये हो।
तुम राज के मद में फूले हो तुम माया में भरमाये हो ॥
घन गर्जन है सन्तापों का, तूफान चढ़ा है पापों का।
तुम महल में सोने वाले हो तुम वैभव में हर्षाये हो ॥
क्या घोर भयंकर रजनी है, क्या सन्त जनों पर बीती है।
तुम को तो चिन्ता अपनी है तुम जनता को बिसराये हो॥

दशरथ—नहीं ऋषिराज, आप निराश न हों। दशरथ अपना कर्तव्य नही भूला है। आप का यह सेवक तनिक भी राजमद में नहीं फूला है। बस महाराज—

न कुछ मन में करो चिन्ता, न दम ठण्डे भरो स्वामी।
खड़ा है दास चरणों में इसे आज्ञा करो स्वामी॥

विश्वामित्र—राजन्! तुम जानते हो कि हम सन्यासी लोग वनों में अपना जीवन बिताते हैं, निर्जन स्थान और पर्वतों की कन्दराओं में जाकर यज्ञ और हवन रचाते हैं। परन्तु मारीच, सुबाहु आदि राक्षस हमें वहां भी सताते हैं, हमारा किया कराया सब भ्रष्ट कर जाते हैं—

नहीं करते हैं पापी ध्यान जप-तप और पूजा का।
हमारे सामने आकर हैं करते पान मदिरा का॥
हवन के कुण्ड में दुर्गन्धियां तर्क डाल जाते हैं।
जहां हम यज्ञ करते हैं वहां ऊधम मचाते हैं॥

गाना

सुनायें क्या तुम्हें राजन्! कि दुष्टों के सताये हैं।
दुखी होकर तेरे दरबार में फरियाद लाये हैं॥
हुए लाचार सन्यासी, सताते हैं हमें पापी।
बढ़ा अन्याय ऐसा, तग हम जीवन से आये हैं॥
हमें अब यज्ञ जप, तप का भी करना हो गया दुर्लभ।
महा अन्याइयों ने हाय ऐसे जुल्म ढाये हैं॥
दशा बिगड़ी है सन्तम की करो रक्षा ऋषिजन की।
मिटाओ पीर अब मन की, कुशल अरदास लायें हैं॥

दशरथ—शोक! महा शोक!

राज्य में जब इस तरह अन्याय का व्यवहार है।
जिन्दगी पर फिर मेरी धिक्कार है धिक्कार है॥

गाना

(तर्ज—तेरी करनी कुटिल माता)

टेक—महा व्याकुल बनाया है-जो यह वर्णन सुनाया है।

अन्तरा—(१) मेरे होते राज्य में दुखी सन्त-सन्तान।
धिक जीवन, धिक-धिक मेरा सिंहासन-अभिमान॥
कलंकित कुल बनाया है-जो यह वर्णन·····

(२) दुष्टों ! इतना पाप और इतना बल-अभिमान।
समय तुम्हारे अन्त का निश्चय पहुंचा आन॥
ऋषिजन को सताया है-जो यह वर्णन·····

(३) जीवन पर मेरे सदा थूकें तीनों लोक।
सन्तजनों को कष्ट हो शोक-शोक, अति शोक॥
यह होनी ने दिखाया है-जो यह वर्णन·····

(४) ऋषिराज आज्ञा करो, है सेवक तैयार।
इच्छा हो जो प्राण की नहीं मुझे इन्कार॥
तुम्हारी ही तो माया है—जो यह वर्णन·····

बस ऋषिराज ! अब नहीं सहा जाता ! अन्याइयों का पाप अब नहीं सुना जाता। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आपके हित के लिये हर उचित काम करूंगा, उन दुष्टों का अन्त करके ही आराम करूंगा :—

मेरा कर्त्तव्य है पहला ऋषि को आन की रक्षा।
करूंगा प्राण देकर भी तुम्हारे मान की रक्षा॥

विश्वामित्र—धन्य हो राजन् ! संसार को तुम जैसे ही धर्मज्ञ राजाओं की आवश्यकता है। परन्तु इस कार्य के लिये तुम्हारा कष्ट उठाना आवश्यक नहीं। हमारे हित के लिए केवल इतना कीजिये कि राम-लक्ष्मण को हमारे संग कर दीजिये। इनके द्वारा हमारा सब कार्य सिद्ध हो जायगा और तुम्हारा यश संसार में अमर पदवी पायेगा :—

करेंगे हर तरह दोनों यही उद्धार दीनों का ।
करो इस भाँति करना है यदि उपकार दीनों का।।

[दशरथ का चिन्ता में पड़ जाना]

विश्वामित्र—बोलो राजन् ! अब क्या कहते हो ? क्या राम-लक्ष्मण को देने में कोई सकोच है ?

[दशरथ फिर चुप रहते हैं]

विश्वामित्र—क्यों ! चुप क्यों हो गये ? क्या रघुकुल ने भी अपना कर्त्तव्य-पालन छोड़ दिया ? क्या सूर्यवश के सूर्य ने भी प्रजा की रक्षा से मुंह मोड़ लिया, आखिर कारण क्या है ? तुम बोलते भी क्यों नहीं ?

दशरथ—महाराज !

[फिर चुप हो जाना]

विश्वामित्र—कहो ! क्या बात है ? हम विनती कर रहे हैं और तुम टाल रहे हो। हम प्रार्थना करते जाते हैं और तुम कानों पर ढाल रहे हो। ठीक है, हमारा कुछ जोर नहीं है, हम दबाव नहीं दे सकते :—

तुम्हें चिन्ता ही क्या है मार दुख की सन्तजन में हो।
बला से मांस और मदिरा हमारे यज्ञ-हवन में हो।।
तुम्हें आराम प्यारा है, तुम्हें है मोह माया का।
सुनो फिर कौन से कानों से तुम दुख दर्द जनता का।।

दशरथ—ऋषिराज ! यह आप क्या कहने लगे ? कृपा करके जरा विचार तो कर लीजिये,इन बालकों की अवस्था देखकर आज्ञा कीजिये।

गाना

कुछ कीजिये स्वामी दया, बालक हैं ये अनजान हैं।
इस वृद्ध का हैं आसरा इस देह के ये प्राण हैं।।
चलता हूं सेवा के लिये, जो चाहो आज्ञा कीजिये।

इनको क्षमा कर दीजिये, बच्चे हैं ये नादान हैं ।।
वन का चलन देखा नहीं, बाहर कदम रक्खा नहीं ।
कोमल हैं ये योद्धा नहीं, वे राक्षस बलवान हैं ।।
धन माल के भण्डार भी, सुख सम्पदा घर-बार भी ।
यह राज भी दरबार भी, चरणों में सब बलिदान हैं ।।

महाराज क्षमा कीजिये ! राम-लक्ष्मण अभी साधारण बालक हैं । जब उन भयंकर राक्षसों को देखेंगे तो डर जायेंगे भला उस घोर संग्राम में कैसे विजय पायेंगे ? कृपा करके ऐसा न कीजिये और सेवक को ही साथ चलने की आज्ञा दीजिए—

नहीं होगा किसी कारण प्रभो ! इन्कार आज्ञा में ।
करूंगा प्राण भी बलिदान मैं सन्तों की सेवा में ।।
करो उपकार इतना मत कहो ऐसे वचन स्वामी ।
करूंगा किस तरह मैं शोक पुत्रों का सहन स्वामी ।।

विश्वामित्र—हां, प्रतीत हुआ कि तुम निपट संसारियों जैसी कायरत करते हो, जो मोह के फन्दे में फंसकर कर्त्तव्य से नीचे गिरते हो । राजन् ! तुम राम-लक्ष्मण को साधारण बालक जानते हो और उन्हें अपना पुत्र करके मानते हो । परन्तु यह नहीं समझते कि निर्गुण ब्रह्म ने दुष्टों का नाश करने के लिये सगुण रूप धारण किया है, सन्तों को सुख देने के लिये ही रघुवंश का नाम प्रकाशित किया है । उनके गुणों का वर्णन करना ऐसा है जैसा सूर्य को मुट्ठी में छिपाना, समुद्र का आचमन कर जाना । जिस प्रकार आत्मा अपनी इच्छा से देह धारण करती है उसी प्रकार सर्वव्यापी ब्रह्म अपनी सबल इच्छा से धर्म-रक्षा के लिये सगुण अवतार किया करते हैं:—

जिन्हें कहते हो तुम बालक, बड़े अद्भुत वे बालक हैं ।
समझते हो जिन्हें तुम पुत्र वे सृष्टि के पालक हैं ।।
बंधा है उनकी आज्ञा में सकल व्यवहार दुनियां का ।
उन्हीं के आसरे चलता है कारोबार दुनियां का ।।

दशरथ—ऋषिराज ! आप का यह हितकारी उपदेश ममता के मार्ग में निष्फल होता है, इसीलिये मोह का पराक्रम दृढ़ और निश्चल होता है।

गाना

टेक—मेरे जीवन का आधार, स्वामी दोनों राजदुलारे।

अन्तरा (१)—बन की नहीं देखी है रीत, दोनों हो जाये भयभीत।
यह क्या करते हो अनुरीत, सेवक शीश चरण पर वारे॥

(२)—विनती सुनो मेरी इक बार,दोनों हैं कोमल सुकुमार।
बनके राक्षस है बदकार, पापी दुष्ट, महा हत्यारे॥

(३)—दोनों पुत्र है दोनो नैन, इन बिन तडफूंगा दिन-रैन।
घर मे बैठ करूं मैं चैन, बन में फिरें ये मारे-मारे॥

(४)—स्वामी कह दीजे इकबार,सन्मुख खड़ा है आज्ञाकार।
मैं हूं चलने को तैयार, खोदूं सकट और दुख सारे॥

विश्वामित्र—(क्रोधित होकर) फिर वही बात फिर वही कायरता ! राजन क्या सूर्य वश की रीति इसी प्रकार निभाते हो ? क्या ममता और मोह में फंस कर ही संसार में यश पाना चाहते हो? क्या महाराज दिलीप के गौरव और भागीरथ की मर्यादा का यही पालन है ? क्या हरीशचन्द्र के सत्य और रघु के यश का यही उदाहरण है ? इसी निर्बल हृदय से प्रजा की रक्षा का भार उठाया है ? क्या साधु सेवा और धर्म पालन का झूठा ही आडम्बर रचाया है। बस-बस रहने दो।

देख ली अब क्षत्रियों के मन में है कितनी दया !
कितना कुल अभिमान है और कितना साहस,वीरता!
है भली बस दूर से ही यह कहानी दूर की।
ढोल की आवाज है केवल सुहानी दूर की॥

दशरथ—क्षमा ! ऋषिराज क्षमा !

विश्वामित्र—बस राजन ! अब सतयुग बीत गया। धर्म, रक्षा और